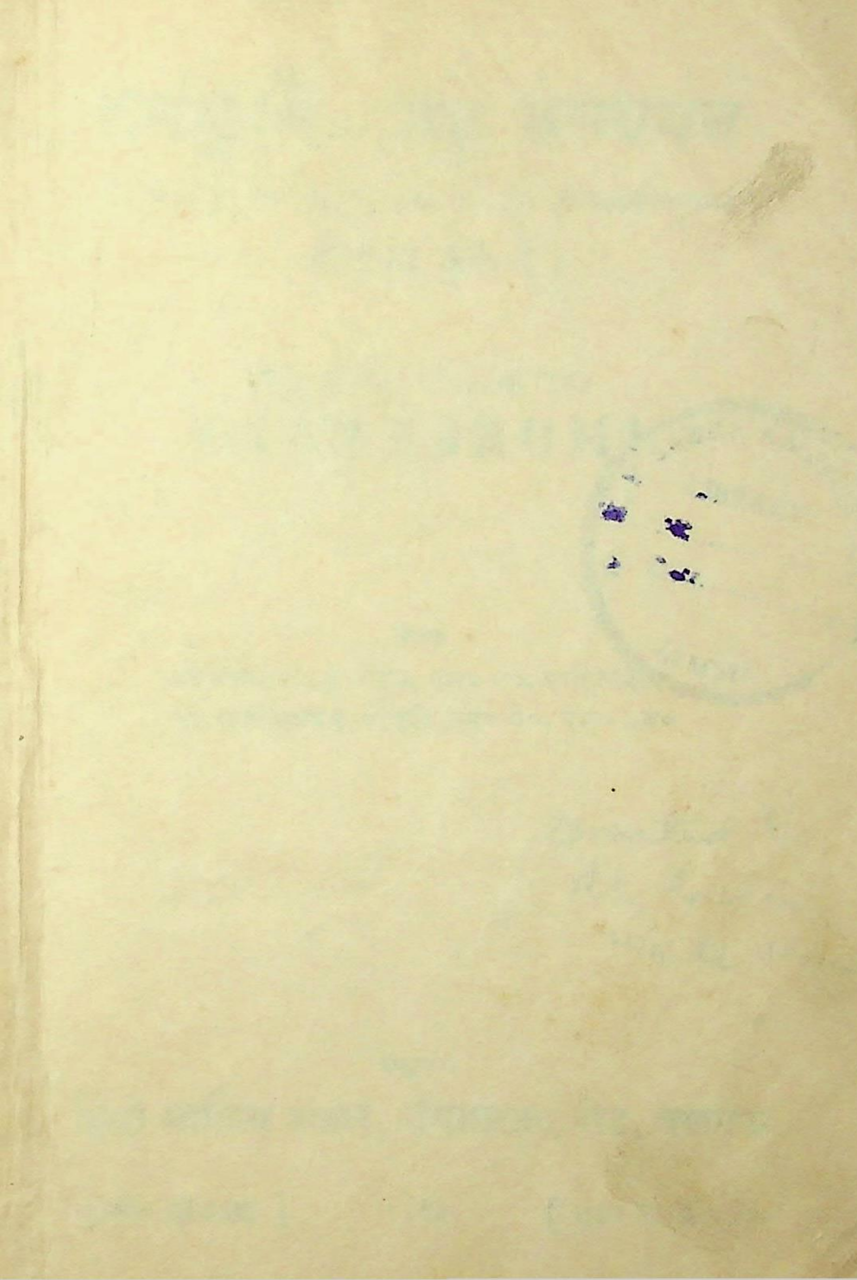
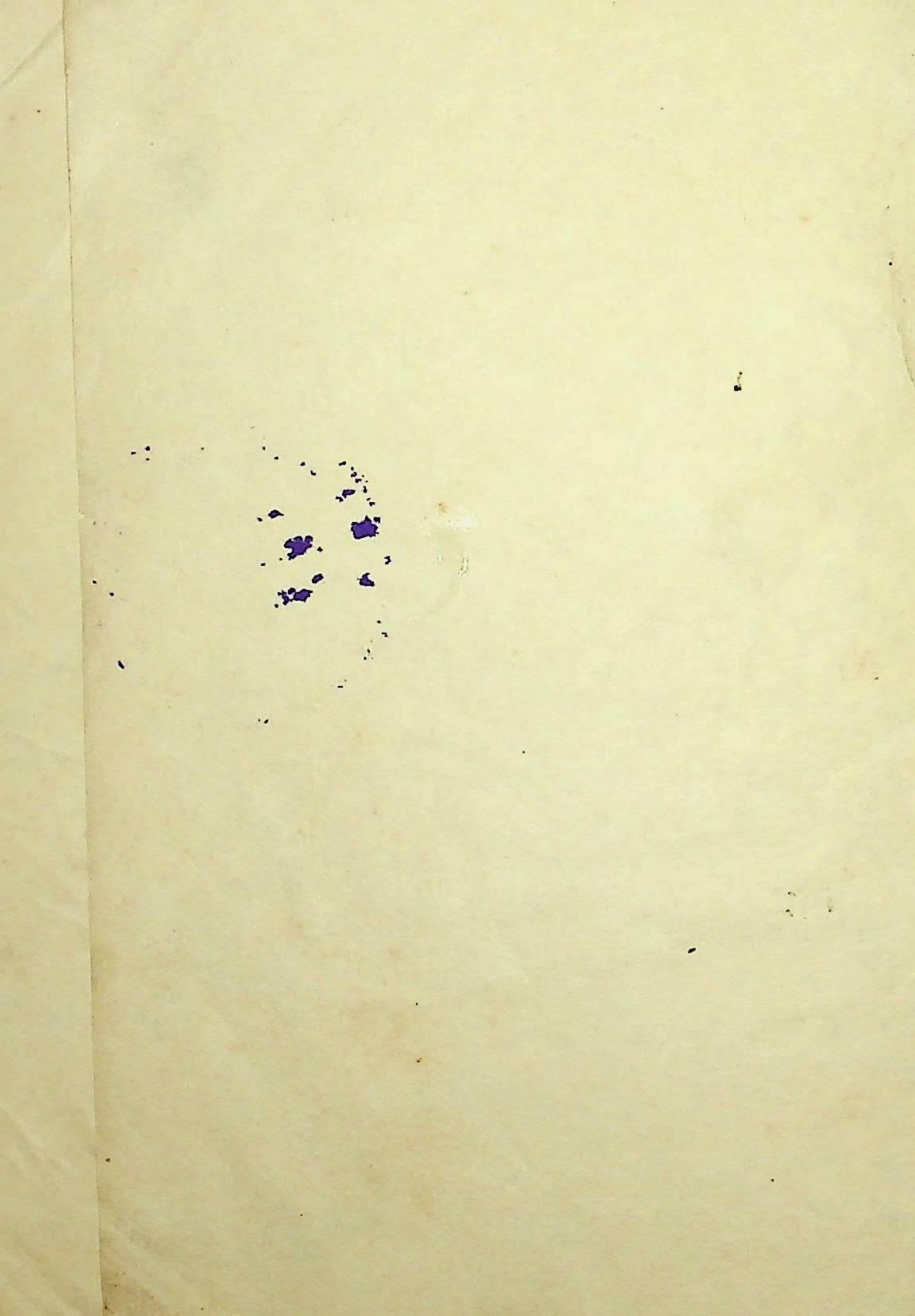




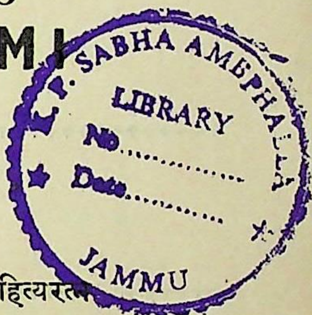
कर्मभूमि : एक अध्ययन

(श्री प्रेमचंद जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'कर्मभूमि' का सरल अध्ययन)

(प्रश्नोत्तर रूप में)

CRITICAL GUIDE TO

KARMABHUMI



लेखक

श्री प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०, साहित्यरत्न

श्री रामखेलावन चौधरी, एम० ए०, एम० एड०

Donated by
RK Razdan
w/o RL Shaw

प्रकाशक

हिंदी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ

द्वितीय संस्करण] १९६५ [मूल्य २) Rs. 2/-

प्रकाशक

हिंदी साहित्य भंडार
गंगाप्रसाद रोड,
लखनऊ

द्वितीय संस्करण
१९६५
मूल्य दो रुपया Rs. 2/-

मुद्रक
पं० बिहारीलाल शुक्ल
शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस,
लखनऊ

प्रश्नोत्तर-सूची

९—'कर्मभूमि' में बुद्धिवादी वर्ग के प्रतिनिधि प्रो० शांतिकुमार का चरित्र चित्रण कीजिए। (पृष्ठ—८५)

१०—अमरकांत को 'कर्मभूमि' के रंगमंच पर अवतरित करने में सुखदा का विशेष योग है। उसका चरित्र चित्रण करते हुए इस स्पष्टतः समझाइए। (पृष्ठ ८८)

११—'सकीना प्यार करने की नहीं पूजने की चीज है'—सलीम के इस कथन पर विचार करते हुए 'कर्मभूमि' की श्रेष्ठतम पात्री का चरित्र चित्रण कीजिए (पृष्ठ ९१)

१२—'कर्मभूमि' में समस्याएँ ही समस्याएँ हैं जिन्होंने कथानक को पूर्णता प्रदान की है। 'कर्मभूमि' के कथा-विकास का विवेचन करते हुए इसे स्पष्ट कीजिए। (पृष्ट ९४)

परिशिष्ट

१३—उपन्यासकार 'प्रेमचंद' का जीवन परिचय देते हुए उनकी सराहनीय हिंदी सेवा का परिचय दीजिए। (पृष्ठ १०१

१४—प्रेमचंद की भाषा-शैली पर अपने विचार लिखिए। (पृष्ठ १०४

१५—"स्वदेश की अभी तक किसी ने व्याख्या नहीं की, पर नारियों की मानरक्षा उसका प्रधान अंग है और होना चाहिए।" इस कथन के आधार पर प्रेमचंद जी के उपन्यासों में आधुनिक स्त्री-समाज की स्थित पर प्रकाश डालिए। (पृष्ठ १२०)

१६—'हिंदी उपन्यास का विकास' पर एक निबंध लिखिए। (पृष्ठ १२९)

कर्मभूमि : एक अध्ययन

प्रश्न—कर्मभूमि के परिच्छेदों का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—एक—उपन्यास के प्रधान पात्र अमरकांत का परिचय पाठक को मिलता है। प्रेमचंद जी ने भारतीय स्कूलों की दशा का चित्र अंकित किया है। पढ़ाई की ओर कम परन्तु पैसे की वसूली की तरफ अधिक ध्यान स्कूलों में दिया जाता है। अमर और सलीम दोनों मित्र हैं। एक स्वभाव से गंभीर और संकोची, दूसरा कवि-हृदय और मनमौजी। दोनों में खूब पटती है। विद्यार्थी जीवन में स्नेह की जो निर्मल धारा बहती है, वही यहाँ भी देखने को मिलती है। अमर के पास फीस देने के लिये पैसे नहीं हैं, सलीम अमीर है, बिना किसी हिचक के वह अमर की फीस अदा कर देता है। प्रेमचंद जी राष्ट्रीयता के हामी हैं। इसलिये विद्यार्थी वर्ग में ही यह विचारधारा बहती हुई दिखाते हैं।

दो—अमरकांत के चारित्रिक विकास की पृष्ठभूमि का परिचय। मनुष्य के स्वभाव और व्यक्तित्व का निर्मांण जिस प्रकार की घरेलू परिस्थितियों में होता है, उन्हीं का चित्र दिखाया गया है। अमर के पिता की व्यस्तता, माता का अभाव, विमाता का आगमन, स्नेह की कमी ने अमर के मनोभावों को कुंठित कर दिया। विवाह में अमर को जिस प्रकार धनी घर की स्त्री मिली, उससे उसके जीवन को एक ठेस ही लगी। प्रेमचंद जी पात्रों के चरित्र विश्लेषण के लिये इन परिस्थतियों का पूरा परिचय दे देते हैं। भारतीय परिवारों की बुराइयों की ओर गौण संकेत है।

तीन—मनुष्य बिना किसी के प्रेम के जिंदा नहीं रह सकता। अमर प्रेम का भूखा है। उसकी बहन नैना का सच्चा स्नेह उसका एक

मात्र सहारा है। पिता और पुत्र की नहीं बनती—अमर पिता से फीस के रुपये तक नहीं माँगता। नैना उसके लिये पिता से रुपये माँगती है, अमर को माँगना पसंद नहीं। अमर के पिता समरकांत का पाठक को यहाँ परिचय मिलता है। भारतीय परिवार में अभाग्यवश पिता और पुत्र में वह सौहाद्र नहीं रहता जो होना चाहिये उसी के दृश्य इस परिच्छेद में देखने को मिलते हैं। अमर आदर्शवादी है–धन का मूल्य वह नहीं समझता; समरकांत का धर्म ही धन है। अमर नये युग का नवयुवक है। वह राष्ट्र प्रेम से पूर्ण है। चरखा चलाना, सभाओं में व्याख्यान देना उसका नित्य का काम है। उसकी पत्नी, विलासिनी सुखदा, को और दूकानदार समरकांत को यह बात पसंद नहीं। अमर की पत्नी से नहीं बनती। 'दोनों में दूध और पानी का मेल नहीं, रेत और पानी का मेल था जो एक क्षण के लिये मिलकर पृथक हो जाता था।' इस परिच्छेद में उन पारिवारिक परिस्थितियों का वर्णन है, जिनके बीच अमर पल रहा था। उपन्यास के अन्य पात्रों में मुख्य समरकांत और सुखदा का परिचय पाठक को मिलता है।

चार—अमरकांत के चरित्र का यहाँ विश्लेषण है। वह आत्माभिमानी और निर्लोभी है। इसीलिये अपनी पढ़ाई के खर्च के लिये न तो पिता की सहायता लेता है और न पत्नी की। वह अपनी सास रेणुका देवी की सहायता भी अस्वीकार करता है। आत्मनिर्भरता उसके चरित्र का गुण है। सारे उपन्यास भर में अमर का यही गुण चमकता हुआ दिखाई देता है। प्रारंभ में प्रेमचंद जी धीरे धीरे-सभी पात्रों का साधारण परिचय देते हैं। कुछ तो स्वयं अपनी ओर से बताते हैं और कुछ कथोपकथनों के सहारे पाठक पात्रों के सम्बन्ध में समझता चलता है। सुखदा के सम्बन्ध में हमें, रेणुका और अमर के कथोपकथनों द्वारा, काफी जानकारी हो जाती है। कथा का बीज इन प्रारंभ के परिच्छेदों में बोया जा चुका है। लेखक अभी केवल एक संसार की सृष्टि कर रहा है।

पाँच—कथा का क्षेत्र और अधिक विकसित होता है। प्रोफ़ेसर शांतिकुमार रंगमंच पर आते हैं। संघर्ष का बीज यहीं पर बो दिया जाता है। कर्मभूमि का उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीयता का चित्रांकन है। नवयुवक वर्ग में उत्पन्न जागृति के चिन्ह यहाँ देखने को मिलते हैं, साथ ही गुलामी और परवशता जिसके फलस्वरूप साधारण गोरों द्वारा एक भारतीय रमणी का दिन-दहाड़े सतीत्व हरण होता है, पाठक को उत्तेजित कर देती है।

छः—अमर के पारिवारिक जीवन का परिचय। अमर नवयुवक है और उसमें उत्तरदायित्व की भावना है इसलिये पुत्र होने की बात आते ही अमर के जीवन में बड़ा परिवर्तन हो जाता है। सुखदा से वह लड़ता नहीं वरन् उसकी हर फरमाइश पूरी करता है। पिता से भी मेल हो जाता है। सभाओं में वह जाना बंद कर देता है। पति-पत्नी के प्रेममय संवाद लेखक के अनुभव के परिचायक हैं।

सात—अमरकांत अब दूकान पर बैठने लगता है परन्तु उसकी प्रवृत्ति व्यावसायिक नहीं है। आदर्शवादी व्यक्ति होने के कारण उसे चोरी और छल से घृणा है और दीन-दुखियों के प्रति दया। काले खाँ का लाया हुआ सोने का कड़ा चोरी का है। उसका मूल्य दो सौ से कम नहीं परन्तु अमर को वह ३०) में देने को तैयार होता है। अमर फिर भी नहीं लेता। दूसरी ओर बुढ़िया पठानिन आती है। उस पर वह इतना दयार्द्र हो जाता है कि रुपये देकर, वह उसे उसके मकान तक इक्के पर बिठाकर भेज आता है। यह परिच्छेद भी परिचयात्मक है। यहाँ पर प्रेमचंद जी सकीना का प्रवेश कराते हैं। यही सकीना कर्मभूमि की सूत्रधार है। उसी की प्रेरणा से अमर के जीवन में महान परिवर्तन होता है।

आठ—आदर्शवाद और यथार्थवाद की युक्तियों का आनन्द यहाँ मिलता है। समर और सुखदा यथार्थवाद के प्रतिनिधि हैं और अमर आदर्श का हामी। काले खाँ के कड़ों को लेकर पिता और पुत्र में

खूब वाद-विवाद होता है। बात बढ़कर व्यंग्य और चोट का रूप धारण करती है। अमर चिढ़ जाता है। सुखदा अपने ससुर की बातों का समर्थन करती है परन्तु अपनी सूझ-बूझ और प्रेम के बल पर अमर को मना लेती है। परिच्छेद में परिवार में होने वाले झगड़ों और मिलाप का सच्चा चित्र है।

नौ— आठवें अध्याय तक लगभग सभी मुख्य पात्रों का परिचय मिल जाता है। कथा की भूमिका भी समाप्त हो जाती है। इस परिच्छेद में संघर्ष का बीजारोपण किया गया है। राजनैतिक आन्दोलन का सूत्रपात मुन्नी को लेकर आरम्भ होता है। मुन्नी वही युवती है जिसका सतीत्व कुछ फौजी गोरों के द्वारा नष्ट हुआ था। मुन्नी बदला लेने के लिये पागल हो उठती है। एक दिन अमर की दूकान पर कई गोरे कुछ सामान बेचने आये। मुन्नी ने मौका पाकर दो गोरों को जान से मार डाला। वह पकड़ी गई। हत्यारिन कहलाने के बजाय वह जनता में श्रद्धा की पात्री बन गई। मुन्नी की आड़ में राष्ट्रीय भावना काम करने लगी। अमर, शांतिकुमार और रेणुका आदि मुन्नी की पैरवी में जी जान से कोशिश करने लगे।

दस—यह राजनैतिक जागृति बढ़ती जाती है। मुन्नी के मुकदमें ने जनता में जान डाल दी। सकीना और पठानिन भी रुचि लेती हैं। संघर्ष आगे बढ़ता है। मुन्नी के चरित्र का विश्लेषण यहाँ अधिक स्पष्टता के साथ किया गया है। अदालत में मुन्नी का बयान हिंदू समाज में स्त्रियों की दशा पर एक व्याख्यान-सा मालूम पड़ता है। जनता की सहानुभूति मुन्नी के प्रति उमड़ पड़ती है।

ग्यारह—भारतीय जन-आन्दोलन और जनता की मनोवृत्ति का पता यहाँ चलता है। मुन्नी के फैसले के सम्बन्ध में लोग नाना प्रकार की कल्पनायें करते हैं। अमर और सलीम जैसे उग्र विचार वाले नव-युवक जज साहब को दंड देने के लिये तैयार हो जाते हैं। प्रेमचंद की कथा कहने की एक विशेष शैली है। वे घटनाचक्र को एक गति से

नहीं चलने देते। पाठक की उत्सुकता बनाये रखने के लिये, वे कथा के प्रवाह के बीच में दूसरी घटनायें लाकर पाठक को दूसरी ओर सोचने के लिये बाध्य कर देते हैं। इस परिच्छेद में, पाठक पहले मुन्नी के संबंध में चिंतित होता है। इसी समय अमर के घर पुत्र-प्रसव की घटना लाकर प्रेमचंद जी ने पाठकों की चिंता को कुछ देर के लिये रोक दिया है। पाठक अमर के साथ उसकी पत्नी सुखदा के सम्बन्ध में सोचने लगता है। अमर पत्नी के लिये परेशान है। उसके घर पुत्र जन्म लेता है।

बारह, तेरह, चौदह—अमर पुत्र जन्म के अवसर पर दावत में व्यस्त हो जाता है परन्तु मुन्नी के फैसले की बात नहीं रुक सकती। सलीम काले खाँ को २००) पर जज साहब पर जूते चलाने के लिये तैयार करता है। प्रोफेसर शांतिकुमार विरोध करते हैं। वे वर्तमान शिक्षा के दोषों का वर्णन करने लगते हैं। यहीं पर मुन्नी के पति का परिचय मिलता है। वह मुन्नी की खोज में आया था। जनता मुन्नी को छोड़ देने के पक्ष में है परन्तु सबका विचार है कि अंग्रेजों का गुलाम जज उसे कभी न छोड़ेगा। पाठक की उत्सुकता बढ़ती जाती है। इसी अवसर पर जज का मुन्नी को निरपराध कहकर छोड़ देना, पाठक को प्रसन्न कर देता है। यह जनमत की विजय है। साथ ही यह प्रसन्नता अस्थायी है। मुन्नी छूट गई। वह देवी के समान पूज्य समझी जाती है। परन्तु वह अपने को भ्रष्ट ही समझती है। हिंदू संस्कारों के प्रभाववश वह समझती है कि अब वह पति और पुत्र को अपना नहीं सकती। पति रोकता रहा पर यह अज्ञात स्थान की ओर चल दी। दूसरी ओर अमर को हम गृहस्थी में फँसता हुआ पाते हैं। लेखक के अनुभव व्यापक हैं। बच्चों के नजर लगना, उनके लिये टोना-टटका, तावीज, पठानिन का तुच्छ उपहार, समरकांत और शिशु का प्रेम आदि गृहस्थी का सच्चा चित्र सामने रख देते हैं।

अमर पत्नी और शिशु के साथ आनन्दमय जीवन बिताने लगता

है। कथा का प्रवाह धीमा पड़ जाता है। ठीक इसी समय हमें उस घटना का संकेत मिलता है, जिस पर कर्मभूमि का सारा महल बना हुआ है—वह है अमर का सकीना के प्रति प्रेम। सलीम और अमर में बातचीत होती है। उसी सिलसिले में सलीम इस भावी प्रेम की ओर संकेत करता है। अमर इनकार करता है परन्तु उसकी बातों से पता चल जाता है कि वह सकीना पर मुग्ध है। सलीम उसे चेतावनी भी देता है। फिर भी वह सकीना की ओर आकृष्ट होता जाता है। सकीना की आर्थिक सहायता, अमर उसकी कढ़ी हुई रूमालें बेंचकर करता है।

कहानी पढ़ते-पढ़ते पाठक तभी उत्सुक होने लगता है, जब वह देखता है कि सकीना और अमर एक दूसरे के निकट आने लगे हैं यद्यपि वे स्वयं यह समझ नहीं पाते। सकीना के पास कपड़े नहीं हैं, अमर अपनी पत्नी की साड़ियाँ लाकर उसे दे देता है। सकीना स्वीकार नहीं करती बदनामी के भय से। अमर कहता है कि वह सकीना के पास नहीं आयेगा। इसी समय वह अपना प्रेम प्रकट कर देती है—'जब से आप आने लगे हैं मेरे लिये दुनिया कुछ और हो गई है।'' यह वाक्य अमर के हृदय से टकराकर बार-बार प्रतिध्वनि करता है। अमर समझ जाता है, सकीना उससे प्रेम करती है। यहीं से संघर्ष गहरा हो जाता है। सकीना और अमर में प्रम है परंतु दोनों के मिलन का मार्ग बंद है। एक मुसलमान है और दूसरा हिंदू, फिर अमर विवाहित है। अमर के चरित्र का विकास होता चलता है, लेखक ने मानव-हृदय की हलचल का सुन्दर विश्लेषण किया है।

सकीना और अमर के मिलन में कठिनाई थी ही, सकीना के विवाह-चर्चा का एकाएक चल पड़ना, अमर को पागल बना देता है। वह आकाश से गिर पड़ता है। वह सलीम से सब खुलकर स्वीकार कर लेता है कि वह बिना सकीना के जिंदा नहीं रह सकता। वह धर्म और समाज को भी ठुकरा देने के लिये तैयार हो जाता है। 'इश्क' के भूत का यह नमूना देखने लायक है। यह स्थिति कथा आगे बढ़ाने में सहायक है।

अमर स्वयं सकीना के साथ जाकर स्पष्ट कह देता है कि तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकता। सकीना विवाह न करने का प्रण कर लेती है और बुढ़िया पठानिन के सामने भी स्पष्टरूप से इंकार कर देती है। यहाँ एक विचित्र परिस्थिति पैदा हो जाती है। पाठक अंतिम परिणाम जानने के लिये और भी अधिक उत्सुक हो उठता है। साथ ही अमर और सकीना के चरित्र का अन्दाजा भी लग जाता है।

पंद्रह—प्रेम मनुष्य के जीवन में बड़े-बड़े परिवर्तन कर देता है। अमर में एक विचित्र स्फूर्ति आ जाती है और साथ ही वह क्रांति की ओर अग्रसर होने लगता है। सुधार के क्षेत्र में वह अग्रगामी है। प्रोफेसर शांतिकुमार यथार्थवादी हैं, इसलिये सेवाश्रम के लिये अपनी नौकरी नहीं छोड़ पाते। अमर साफ कहता है—अब इस्तीफा देना पड़ेगा। इस अध्याय में प्रोफेसर साहब के चरित्र का परिचय मिलता है। साथ ही अमर पर सकीना का कितना अधिकार हो चुका था, इसका अंदाजा इस बात से लगता है कि सकीना के कहने से वह प्रोफेसर साहब की शांतिप्रिय नीति का समर्थन करने लगता है। कथा-विकास की दृष्टि से यह परिच्छेद केवल प्रासंगिक है।

सोलह—अमर ने सकीना के घर जाना छोड़ दिया। दोनों प्रेमियों ने प्रेम को उज्जवल रूप देना चाहा। मिलन को महत्व नहीं दिया गया, इसलिये कथा में संघर्ष का वेग कम पड़ गया। पाठक की उत्सुकता मंद पड़ने लगती है। इसलिये प्रेमचंद जी ने अमर और समरकांत के बीच झगड़े की सृष्टि कर दी। अमर म्यूनीसिपैलिटी का मेम्बर चुना गया। लाला जी को इस प्रकार के बेगार के काम पसंद न थे। पिता-पुत्र के विचारों में विरोध था ही। बस एक दिन बहस छिड़ गई। लाला जी के व्यंग्य अमर के हृदय में छिद गये। यह सुखदा को लेकर स्वतंत्र रूप से स्वयं कमा कर पेट भरने के लिये तैयार हो गया। सुखदा पति के साथ चलने को तैयार हो जाती है। सुखदा के आत्मगौरव का परिचय यहीं पर मिलता है। अमर की बहन नैना और दासी भी उन्हीं का

साथ देते हैं। लाला जी अपनी पराजय स्वीकार नहीं करते। अकेले घर में रह जाते हैं परन्तु मन में एक क्षोभ है।

अमर सुखदा आदि को लेकर एक दूसरे घर में रहने लगता है। सुखदा की माता रेणुका देवी उन दोनों की सहायता करना चाहती है परन्तु वे उसे स्वीकार नहीं करते। लेखक के व्यापक अनुभवों का यहाँ हमें पता चलता हैं। परिवारिक कलह, पिता-पुत्र का मन मुटाव, पिता की मनोभावनायें, पति-पत्नी के विचारों को पढ़कर हम दंग रह जाते हैं।

सत्रह—अमरकांत परिश्रमी है और उसमें आत्मसम्मान है। वह आदर्श के पीछे चलनेवाला युवक खादी के गट्ठर सर पर रख कर बेचता है। दूसरी ओर सुखदा ५०) की नौकरी कर लेती है। दोनों परिश्रम करते हैं परन्तु इस जीवन से उन्हें मन ही मन असंतोष भी है, जो कलह के रूप में फूट निकलता है। लाला समरकांत बीमार पड़ते हैं, सुखदा उनकी सेवा करने पहुँच जाती है परन्तु अमर नहीं जाता। लाला जी मन ही मन कुढ़ते हैं। उधर पति-पत्नी में अकसर वाद-विवाद इस बात पर हो जाता है कि अमर के खादी बेचने से बदनामी होती है। अमर यों ही परेशान था, पत्नी के साथ यह कलह, उसे सकीना की ओर वेग से ढकेलती है। सकीना ने तभी उसे पत्र लिख कर बुलाया। अमर और सकीना का यह मिलन उपन्यास की मुख्य घटना है। अभी तक यह प्रेम गुप्त था। आज जब अमर सकीना से साड़ी लेकर, भेंट करने गया, और दोनों मुक्त भाव से मिल रहे थे, तभी बुढ़िया पठानिन आ पहुँची। भेद खुल गया। इतना भीषण कांड आ उपस्थित हुआ कि अमर के ऊपर पहाड़ टूट पड़ा। वह मुँह दिखाने लायक न रहा। बुढ़िया की फटकार ने उसे बेहोश कर दिया। सकीना उसे रोकती रही परन्तु वह चला गया। उपन्यास भर में यह अध्याय सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यहीं से कथा का विकास पूर्ण होता है। अमर के जीवन की धारा की दिशा यहीं से निश्चित हो जाती है। वह

'कर्मभूमि' में उतरता है। वह देश सेवा का व्रत धारण करता है और गाँवों की ओर उसकी दृष्टि जाती है। कर्मभूमि का उद्देश्य भारत में फैली हुई राजनैतिक चेतना का चित्रण है। अब उपन्यास भर में केवल यही विषय मिलेगा।

अठारह—इस परिच्छेद में उपन्यास की कथा की प्रथम स्थिति समाप्त होती है। अमर घर-बार, पत्नी-पुत्र आदि सबको छोड़ देने का निश्चय करता है। उसका विद्रोही मन अशांत था ही। इस दुर्घटना ने रास्ता साफ कर दिया। जिस बदनामी से वह डरता था, वह सामने आ ही गई। सलीम उसे समझाता रहा, यहाँ तक कि वह समरकांत को बुला लाया परन्तु अमर न माना। वह सकीना के बिना न रहेगा, यह निश्चय, उसने समरकांत के सामने प्रकट कर दिया। सुलह न हो सकी। अमर ने कहीं चले जाने का निश्चय कर लिया। कर्मभूमि की भूमिका समाप्त हुई।

दूसरा भाग

एक—अब 'कर्मभूमि' का रंगस्थल गाँव है। प्रेमचंद जी पाठक को अपने प्रिय विषय 'गाँव' की ओर ले आते हैं। प्रधान पात्र अमर की क्रीड़ास्थली यह गाँव बन जाता है। यहाँ हरिजनों की बस्ती है। गाँधी वादी विचारधारा की मुख्य शाखा हरिजनोद्धार है। उसी की गूँज यहाँ मिलती है। रैदासों के साथ अमर रहने लगता है। संयोगवश यहाँ पर मुन्नी मिल जाती है—वही मुन्नी जिसे अमर ने मुकदमे में पैरवी करके छुड़ाया था। स्वाभाविकता की दृष्टि से यह संयोग खटकता है परन्तु 'संयोग' जीवन में आते ही हैं। अतः मुन्नी का फिर मिल जाना सम्भव है। अमर यहीं रहकर ग्रामीण जनता में जागृति उत्पन्न करता है। ग्रामीणों की सरलता, स्नेह और निष्कपटता के दृश्य देखने योग्य हैं। अमर सलोनी के घर ठहरता है।

दो—यह परिच्छेद भी परिचयात्मक है। 'कर्मभूमि' में युद्ध करने वाले पात्रों का प्रवेश होता है। अमर और गाँव के चौधरी गूदड़ की

बातचीत के सहारे 'खेती' की दुर्दशा का पता चल जाता है। ग्राम समस्या की जड़ में 'गरीबी' पाई जाती है। इसी समस्या पर प्रकाश डाला गया है। अमर यहीं गाँव में रहकर खेती करना चाहता है। पयाग उसे खेती न करने की सलाह देता है। अंत में गूदड़ यह कह कर कि चलो एक भला आदमी इस गाँव में बस जायगा, अमर को साझे में खेत देना स्वीकार कर लेता है।

तीन—अमर सुधार का कार्य, शिक्षा के द्वारा आरम्भ करता है। एक पाठशाला गाँव में लग जाती है, बच्चे पढ़ते हैं। बूढ़े भी अमर से प्रभावित होते हैं, यहाँ तक कि गूदड़ चौधरी शराब पीना छोड़ देते हैं। मुन्नी धीरे-धीरे अमर की ओर आकृष्ट होती है। अमर मुन्नी को अपना परिचय देता है। दोनों एक दूसरे के प्रति खिचने लगते हैं। अमर प्रेम का प्यासा था। जो कमजोरी उसे सकीना की ओर खींच ले गई थी, वही चीज उसे मुन्नी के चरणों पर अपना हृदय समर्पित करने को बाध्य करती हैं। अमर के चरित्र पर इससे विशेष प्रकाश पड़ता है।

चार—कथा संघर्षों के सहारे चलती है। अमर इस गाँव में बस गया। ऐसा जान पड़ने लगता है कि सारी समस्या का अंत हो गया। इसी समय अमर के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व आरम्भ होता है। वह जिस संसार से भागकर एक नयी दुनिया बसाने चल पड़ा था (और एक गाँव में वह अपनी कल्पना सफल बना भी सका) वही संसार फिर उसके पीछे आ पहुँचा। सलीम, सकीना और नैना के पत्रों के रूप में। सलीम और नैना ने अमर को लिखा था कि उसके जाने के बाद क्या हुआ। सकीना के पत्र ने वियोग से मुरझाये हुये प्रेम के पौदे को हरा कर दिया। उसके मन में फिर संघर्ष उत्पन्न हो गया।

अमर के चले जाने के बाद, पाठक को यह जानने की इच्छा होती है कि फिर उसके घर में क्या हुआ। बहन पत्रों द्वारा उसके पिता, पत्नी, मित्र सलीम और प्रेमिका सकीना की प्रतिक्रियाओं का पता चल जाता है और कथा आगे बढ़ती है।

पाँच—कथा का केंद्र अब गाँव है। ग्रामीण संस्कृति का चित्र इस परिच्छेद में खींचा गया है। लोक नृत्य गाँव में होते रहते हैं। यहाँ भी गाँव के नर-नारी नाचते दिखाई देते हैं। मुन्नी एक युवक के साथ नृत्य करती है। अमर को यह बात खटकती है—क्योंकि वह मन ही मन मुन्नी को प्यार करता है। इसलिए ईर्ष्या होना स्वाभाविक था। ग्रामीण-उत्सवों में भाग लेते-लेते अमर जनप्रिय होने लगा। यह परिच्छेद प्रासंगिक है।

छः—कथानक की दृष्टि से यह परिच्छेद महत्वपूर्ण नहीं। घटनायें मुख्य कथा से कोई सम्बन्ध नहीं रखतीं परन्तु ग्राम्य जीवन के चित्र देखने को मिलते हैं। सुधारों की चर्चा भी है। गाँव के लोगों में एक जड़ता-सी दिखाई देती है, वे रूढ़िग्रस्त हैं परन्तु यदि उन्हें नेतृत्व मिल जाय तो वे क्रांति भी कर सकते हैं। अमर ने शिक्षा का आन्दोलन चलाया। उन नीच जाति वाले अर्धमृत समाज में उसने जान फूँक दी। लोग स्वयं पाठशाला बनाने में जुट गये। एक दिन मरी हुई गाय के मांस का बहिष्कार कराने के लिये मुन्नी और अमर ने सत्याग्रह का सहारा लिया। हरिजनों का उद्धार तभी हो सकता है, जब वे स्वयं चेतें। अमर के सम्पर्क से उनमें जाग्रति पैदा होती है और वे समझने लगते हैं कि "सारी दुनिया हमें इसलिये अछूत समझती है कि हम दारू-शराब पीते हैं, मुरदा मांस खाते हैं और चमड़े का काम करते हैं।" तभी से वे बीभत्स कार्य छोड़ देते हैं। परिच्छेद की घटनायें साधारण हैं परन्तु 'कर्मभूमि' में होने वाली घटनाओं की ये कड़ियाँ हैं। इनका भी महत्व है।

सात—अमर के परिश्रम से गाँव में जाग्रति हुई। कर्मभूमि युद्ध-भूमि है। युद्ध में उतरने के पहले तैय्यारी की जरूरत होती है। इसके पूर्व आन्दोलन आरम्भ हो, पहले राजनैतिक चेतना का पैदा होना जरूरी है। संगठन और अधिकारों का ज्ञान जनता में होना आवश्यक है। कथा अब एक ऐसे स्थल पर पहुँच चुकी है, जहाँ तैय्यारी पूरी जान

पड़ती है । आगे संघर्ष आने वाला है । लेखक इस परिच्छेद में मुन्नी की कथा कहकर एक पिछड़ी हुई कहानी को मुख्य कथानक के साथ लाकर जोड़ देता है । मुन्नी का एकाएक अमर से मिलना, पाठकों को उत्सुक बना देता है । वह यहाँ कैसे पहुँची ? मुन्नी स्वयं अपनी कहानी कहती है । उसका सतीत्व नष्ट हो चुका था । इसलिये वह अपने पति के पास नहीं गई । वह हरिद्वार की ओर चल दी । रास्ते में वह लखनऊ में उतर पड़ी । यहीं पर उसका परिचय एक परिवार से हो गया । उनके साथ वह हरिद्वार आयी । उस परिवार में एक बच्चा था, अपने अपत्य प्रेम की प्यास बुझाने के लिये, उनके साथ रहना स्वीकार किया । हरिद्वार के एक धर्मशाले में वे ठहरे । परिवार की स्वामिनी एक मूर्ख स्त्री थी । उसने मुन्नी को, अपने पति के साथ अवैध सम्बन्ध का दोषी ठहराया । उसी समय मुन्नी का पति, बच्चे को लिये वहाँ जा पहुँचा । पति ने साथ चलने का आग्रह किया परन्तु मुन्नी न मानी—मन में वह स्वयं अपने को पतित मानती थी । पति दुखी होकर लौट गया । मुन्नी गंगा में कूद पड़ी, पर मरी नहीं । नदी में बहती हुई वह इसी इसी गाँव की ओर आ निकली । यहीं गूदड़ के बड़े लड़के ने उसे निकाला । वह मुन्नी से प्रेम करने लगा और मुन्नी की बीमारी में उसने अपना बलिदान कर डाला । मुन्नी एक बार पति को खोजने के लिये हरिद्वार गई, वहीं उसे पति के और पुत्र के मरने का समाचार मिला । वह फिर इसी गाँव में लौटकर रहने लगी ।

तीसरा भाग

एक—कर्मभूमि की कथा के दो स्थल हैं—एक गाँव और दूसरा शहर । एक स्थल में कथा का सूत्र अमर के हाथ में है और दूसरे स्थल में सुखदा के हाथ । अमर के गृह-त्याग के बाद, वहाँ की कथा के विषय में हम नहीं जानते । इसलिये प्रेमचंद जी इस अध्याय में वहाँ की दशा का चित्रण करते हैं । अमर के चले जाने के बाद समरकांत के जीवन में परिवर्तन आ गया । ईश्वर पर उनका विश्वास न रहा । हाँ उनका

दैनिक क्रम जारी रहा। धन का लोभ भी कम हो गया। कथा के चंदे में वे एक मोटी रकम बिना किसी सोच-विचार के दे डालते हैं।

दो—अमर के जाने के बाद सुखदा, नैना और सकीना पर क्या प्रभाव पड़ा—इस परिच्छेद में पाठक देख सकता है। सुखदा को विराग ने धर दबाया। अमर से उसे घृणा हो गई, पर सकीना से नहीं। नैना अपने भाई से पूर्ववत स्नेह करती रही। एक दिन सुखदा और नैना, सकीना से मिलने गईं। बीमार थी। सकीना अपढ़ थी परन्तु वह सीधे-सादे शब्दों में सुखदा को प्रेम का यह मंत्र सिखाती है जिसके बल पर विश्व-विजय की जा सकती है। वह प्रेम में सेवा को उच्च स्थान देती है। वह अमर के प्रेम में पूर्ण विश्वास करती है। सुखदा परास्त हो जाती है। अपरोक्ष रूप से हम इन दोनों स्त्रियों के चरित्र की तुलना कर सकते हैं। एक चौड़ी, पर उथली नदी है और दूसरी है पतली पर गहरी जिसकी थाह लेना कठिन है।

तीन—इस परिच्छेद से वास्तविक संघर्ष का आरम्भ होता है। शहर में हरिजनोद्धार को लेकर आन्दोलन चल पड़ता है। एक ठाकुर-द्वारे में कथा होती है। लाला समरकांत, नैना, प्रोफेसर शांतिकुमार, और अन्य लोग वहाँ जाते हैं केवल सुखदा नहीं जाती। वह समाज और धर्म के विरुद्ध हो जाती है—ये दोनों स्त्रियों को गुलाम बनाते हैं। ठाकुरद्वारे में इसी समय चमारों का आगमन होता है। वे बाहर दरवाजे पर भी बैठने के अधिकारी नहीं। गाली-गलौज के बाद, उन पर जूतों की वर्षा होती है। इस बात को लेकर वहाँ दो दल बन जाते हैं। शांतिकुमार और आत्मानन्द सुधारवादी दल का नेतृत्व करने लगते हैं, और यहीं पर मुख्य संघर्ष का सूत्रपात होता है।

चार—आन्दोलन का दृश्य यहाँ भी दिखाई देता है। समरकांत, लाला धनीराम और मंदिर के पुजारी-पंडे पुरानी लकीर के फकीर हैं। छूतछात का भेदभाव उन्हें पसंद है। दूसरी ओर प्रोफेसर शांतिकुमार, सलीम और आत्मानंद आदि हैं। कल की दुर्घटना से काफी तनातनी

फैली। प्रोफेसर साहब ने एक विराट सभा का आयोजन किया और हरिजनों को अपने अधिकारों से अवगत कराना आरम्भ किया। व्याख्यान और प्रचार द्वारा जागृति फैली। मंदिर में उन्होंने घुसने का निश्चय किया। संघर्ष हुआ। शांतिकुमार घायल हो गये। अमर की बहन नैना का शांतिकुमार की ओर आकर्षण होता गया।

पाँच—अछूतों की समस्या को लेकर, मन्दिरों में हरिजनों के प्रवेश को मुख्य विषय बनाकर संघर्ष आरम्भ हो जाता है। इस परिच्छेद में आन्दोलन की लपट में कितने ही मनुष्य भस्म होते दिखाई देते हैं। मंदिर के द्वार की रक्षा के लिये बंदूकों का प्रयोग हुआ। गोली चली और कितने ही आदमी मारे गये। प्रेमचंद जी के उपन्यास जिस युग में लिखे गये, उसी की छाप यहाँ दिखाई देती है। दमन के साथ-साथ आन्दोलन बढ़ता गया। जो दमन में विश्वास नहीं करते थे, वे नेता बन गये। इसका ज्वलंत उदाहरण है विलासिनी सुखदा, जो कभी अमर का विरोध इन्ही बातों को लेकर करती थी। सुखदा इस आन्दोलन का नेतृत्व करती है और मंदिर में हरिजन-प्रवेश की आज्ञा मिल जाती है। यों तो इस परिच्छेद का महत्व उतना अधिक नहीं है परन्तु इसमें वर्णित एक मुख्य घटना ऐसी है, जो आगे चलकर कथानक पर बहुत प्रभाव डालती है। वह है सुखदा का आन्दोलन के क्षेत्र में उतरना। इसने अमर और सुखदा को निकट लाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

छः—सुखदा और अमर के विचारों में वैषम्य था। ज़िस क्षेत्र में अमर काम कर रहा था, उसका अनुभव सुखदा को अब हुआ। 'उसे अब मालूम हुआ कि अमरकांत को धन और विलास से जो विरोध था, वह कितना यथार्थ था।' यही भावना उसके मनोमालिन्य को दूर करने में सहायक होती है। सुखदा के चरित्र में विशेष अंतर आ ज़ाता है। प्रसंगवश यहाँ पर प्रोफेसर शांतिकुमार के स्वभाव का भी परिचय हमें मिलता है। मनुष्य प्रेम का भूखा है। उन्हें नैना के प्रति विशेष प्रेम है। शिशु-प्रेम की इच्छा उन्हें भी है उन्हें अपने जीवन में

एक कमी का अनुभव होता है—वह है स्त्री। प्रेमचंद जी ने मानव-स्वभाव का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। सुखदा ने नारीभावना का जो परिचय दिया है, वह पढ़ने योग्य है। उसमें आत्मसम्मान है, परन्तु पति द्वारा परित्यक्ता होने का दुख भी उसे कम नहीं।

सात—इस परिच्छेद में सलीम और शांतिकुमार के चरित्र पर और भी अधिक प्रकाश डाला गया है। शांतिकुमार सुधारक हैं परन्तु स्वयं एक अच्छे पद पर हैं और मोटी रकम वसूल करते हैं। वह स्थिति उनके मन में भीषण संघर्ष पैदा कर देती है। उधर सलीम भी राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग तो लेता है, परन्तु आई० सी० एस० होने की धुन उस पर सवार है। साथ ही उसके मन में संघर्ष भी है। वह कुछ दिन नौकरी करके, फिर उस क्षेत्र में आना चाहता है। अमर के पत्र-व्यवहार से भी प्रोफेसर साहब को कोई निश्चित राय नहीं मिलती—अंत में वे नौकरी में बने रहने का निर्णय करते हैं। अमर ने सुखदा के प्रति शांतिकुमार को लिखे पत्र में सम्मान प्रकट किया था। सुखदा मानिनी है, इसलिये वह अमर को मनाने के लिये तैयार नहीं होती। सुखदा, रेणु का देवी और शांतिकुमार में विवाह पर बहस होने लगती हैं। अंत में वे लोग एक सेवाश्रम स्थापित करने की योजना बनाते हैं। रेणुकादेबी अपनी तीन-चार लाख की जायदाद एक ट्रस्ट बनाकर आश्रम के लिये देने को तैयार हो जाती हैं। शांतिकुमार जैसे शुष्क हृदय वाले व्यक्ति में भी स्नेह है, इसका पता नैना के प्रति उनके आकर्षण से लगता है। नैना के विबाह का समाचार, जब वे रेणुका देवी से सुनते हैं, तो उन्हें ठेस लगती है।

आठ—इस परिच्छेद में संक्षिप्त रूप से कथा के कई अंगों को पूरा कर दिया गया है। सेवाश्रम का ट्रस्ट बन गया और जन-आंदोलन के लिये शहर में एक मजबूत अड्डा कायम हो गया। कुछ सिपाही, इस युद्ध से अलग हो गये। स्वामी आत्मानन्द और सलीम उसे छोड़ बैठे। शांतिकुमार नौकरी से इस्तीफा देकर प्राणपण से इसी काम में जुट गये।

सलीम को आई० सी० एस० की नौकरी मिली और आत्मानन्द देहात चले गये । प्रेमचंद जी सलीम और आत्मानन्द को शहर के क्षेत्र से निकाल कर 'गाँव' की ओर ले जाते हैं और अमरकांत के साथ उनका संयोग होता है । नैना का विवाह हो गया । जिस घर में वह गई वह विचित्र था, वहाँ धन और फैशन का राज्य था । सुखदा और शांति-कुमार सेवाश्रम की शाखायें खोलने लगे ।

ऐसा जान पड़ता है कि यहाँ पर कथा का प्रभाव धीमा पड़ने लगा । बस तभी प्रेमचंद जी नये संघर्ष की तैयारी करते हैं । यह संघर्ष म्यूनिसिपैलिटी की एक जमीन के बारे में उठ खड़ा होता है । सेवाश्रम के लिये भवन इसी जमीन पर बनाने का निश्चय किया गया । इस भूमि को प्राप्त करना कठिन था क्योंकि म्यूनिसिपैलटी के सदस्य उसे स्वयं हड़पना चाहते थे ! नैना के ससुर धनीराम और सलीम के पिता का भी स्वार्थ था । सदस्यों को राजी करना कठिन था । समरकांत सहायता का बचन देते हैं । लाला धनीराम को साधने की योजना बनती है । यहीं से कथा फिर अपनी तीव्र गति से चलने लगती है ।

नौ—उपन्यास का यह परिच्छेद भी महत्वपूर्ण है । अमर और सकीना के प्रेम ने जिस संघर्ष की सृष्टि की थी, वह अब समाज की ओर चल रहा है । सुखदा के सेवाभाव के अपना लेने से पति-पत्नी के मिलन का द्वार खुल जाता है । इस परिच्छेद में हम सलीम और सकीना के बीच प्रेम का अंकुर जमता हुआ देखते हैं । सकीना अमर को नहीं छोड़ना चाहती परन्तु परोक्षरूप से पाठक को संकेत मिल जाता है कि सकीना और सलीम का विवाह होगा । एक दिन सुखदा सकीना के घर जाती है । सकीना ने परिश्रम द्वारा पैसा पैदा करके घर की गरीबी बहुत कुछ दूर कर दी थी । बुढ़िया पठानिन भी अपने विचार बदल चुकी थी । सकीना और सुखदा की बातचीत से पता चलता है कि सलीम सकीना से शादी करना चहता है । सकीना सुखदा को बताती है कि अमर निर्दोष है—उसे प्रेम की प्यास है और सुखदा ने उसे वह चीज

नहीं दी, जो वह चाहता था। सुखदा अपनी भूल समझ लेती है परन्तु वह मानिनी है। अमर के आगे हाथ न फैलाने का निश्चय उसने ज्यों का त्यों कायम रक्खा।

दस—सुखदा म्यूनिसिपैलटी की जमीन प्राप्त करने के लिये सेठ धनीराम के घर जाती है। उनका पुत्र मनीराम आधुनिक बिगड़े दिल वाले नौजवानों का प्रतिनिधि है। वह पक्का भौतिकवादी है। व्यवसाय में सफलता का नशा उसे मस्त कर देता है। सुखदा के साथ उसका वाद-विवाद हो जाता है। नैना के विषय में उसने कुछ ऐसी बातें कीं कि सुखदा उसे सहन न कर सकी। सुखदा परित्यक्ता नारी थी। मनीराम ने वहीं पर चोट की, जहाँ उसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी। सुखदा अपमानित होकर चली गई, परन्तु यहीं पर भावी संघर्ष की नींव पड़ गई।

ग्यारह—यह परिच्छेद प्रासंगिक है। नैना के दाम्पत्य जीवन पर प्रकाश डाला गया है। घर के परदे में बंद भारतीय स्त्रियों की दशा का वर्णन है। सेवाश्रम के सम्बन्ध में प्रयत्नशील प्रोफेसर शांतिकुमार उस समय आ पहुँचते हैं, जब नैना, सुखदा के साथ बातचीत कर रही थी। सुखदा एक काम के बहाने हट जाती है। शांतिकुमार और नैना एकांत में रह जाते हैं, फिर भी हृदय की बात नहीं कह पाते। लाज और संकोच दोनों का गला दबा देते हैं। अव्यक्त प्रेम का यह सुन्दर चित्र है।

बारह—म्यूनिसिपैलिटी में सेवाश्रम की जमीन को लेकर सभा हुई। सेवाश्रम के समर्थक दल की हार हुई और जमीन न देने का निश्चय हुआ। बस एक बार फिर इस समस्या को लेकर संघर्ष की तैयारी होने लगती है। कथा का मंद प्रवाह फिर द्रुतगति से बहने लगता है। सुखदा के नेतृत्व में मेहतर, चमार, कुँजड़े और कबड़िये सभी हड़ताल की तैयारी करते हैं परन्तु जनता के इस शोषितवर्ग में वह दम कहाँ! सभी भयभीत हैं। भारतीय जनता की दासता के दमन

में पिसी हुई आत्मा के दर्शन हमें यहाँ होते हैं। वे कष्ट में हैं परन्तु सुखदा के साथ चलने में घबराते हैं।

तेरह—जनता के इस रवैये से पाठक का मन असमंजस में पड़ जाता है। उसकी उत्सुकता बढ़ जाती है। सुखदा सुधारक है, जनता उसके साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर नहीं चल पाती। उसको निराशा होती है। नैना को इससे प्रसन्नता हुई है क्योंकि उसकी ससुराल वालों का इसमें लाभ था। आश्चर्य की बात है कि जनता निराश और दब्बू होने पर भी सुखदा का साथ देती है। हड़ताल हुई। सुखदा को गिरफ्तार करने की आज्ञा हुई। समरकांत बहू को समझाते हैं, पुलिस को फुसलाना चाहा, पर सुखदा ने जेल जाने का निश्चय कर लिया और उसने जमानत दिलवाने या पैरवी करवाने से इन्कार कर दिया। वह जेल चली गई।

इस परिच्छेद में गाँधीवादी विचारधारा की छाप स्पष्ट है। तत्कालीन आन्दोलन का चित्र है, अतः इस परिच्छेद का महत्व ऐतिहासिक है। बुढ्ढे समरकांत के चरित्र का विश्लेषण अच्छा हुआ है। मानव स्वभाव का ज्ञान प्रेमचंद जी को जितना है, उतना कम लेखकों को होता है। गांधी जी के सत्याग्रह के अस्त्र की सफलता और उसकी रूपरेखा का चित्रण बड़ा स्वाभाविक है। यहाँ पर अंत में भावी घटनाओं का—सुखदा और अमर के पुर्नमिलन का संकेत मिलता है।

चौथा भाग

एक—कथा स्पष्ट रूप से दो धाराओं में बँट गई है। एक का केंद्र शहर था और दूसरे का गाँव। शहर की घटनाओं से पाठक परिचित है पर गाँव पीछे छूट गया था। प्रेमचंद जी हमें फिर उस ओर ले जाते हैं। गांवों में राजनैतिक चेतना फैल रही थी। अमर इस कार्य में संलग्न था। सलीम ने उसी जिले में जहाँ अमर था, चार्ज लिया। हम यहाँ सलीम के चरित्र का विकास होता देखते हैं। उसमें अफसरी बू आ जाती है। सलीम और अमर का मिलन होता है। शादी की बात

छिड़ जाती है और सकीना का प्रश्न अमर के सामने आ खड़ा होता है। अमर का दिल बदल चुका था। यहाँ भी पाठक को भावी घटना का अमर और सुखदा के मिलन का संकेत मिल जाता है। पाठक सकीना के भविष्य के बारे में उत्सुक होता है परन्तु उसे यहाँ पता चल जाता है कि सकीना और सलीम के विवाह का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। सलीम इसी समस्या को लेकर अमर से मिलने गया था। वह अपना मन्तव्य प्रकट कर देता है। वह सकीना से प्रेम करता है। बस यहीं पर 'कर्मभूमि' की कथा चरम सीमा पर पहुँच जाती है। मुख्य समस्या का हल पाठक को दिखाई पड़ने लगता है।

दो—अमरकांत को जीवन का हल मिल गया। इसका प्रभाव उसके दैनिक क्रम पर पड़ने लगा। एक तो उसका उत्साह बढ़ गया, दूसरे उसका मन सकीना और मुन्नी की ओर से हटने लगा। गाँववालों पर उसका प्रभाव बढ़ चला। आत्मानंद भी उसके साथ आकर जुट गये। उधर मुन्नी, अमर की उदासीनता ताड़ गई। प्रेमी के हृदय को धोखा देना कठिन है। मुन्नी के मन को बड़ा कष्ट होता है। परोक्ष रूप से प्रेम का यहविश्लेषण अच्छा बन पड़ा है। कथा की दृष्टि से परिच्छेद महत्वपूर्ण नहीं है।

तीन—इस अध्याय में प्रेमचंद जी फिर एक संघर्ष की सृष्टि करते हुये दिखाई देते हैं। अमर के क्षेत्र के जमीदार एक महंत जी थे। गाँववालों की कमाई के बल पर हलुवा-पूड़ी और मोहनभोग का आनंद लेते थे। जमीदारी प्रथा के दोषों का वर्णन यहाँ किया गया है। संघर्ष का कारण यह था कि उपज कम हुई परन्तु अनाज का भाव गिर गया। मंदी के कारण किसान लगान देने में असमर्थ थे। गाँव में सभा हुई। आत्मानंद ने लगान अदा न करने की सलाह दी। अमर ने इस प्रकार की विचारधारा का विरोध किया परन्तु असफल रहा।

चार—परिच्छेद प्रासंगिक है। अमर में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है। वह मुन्नी से खिंचा रहने लगा था, मुन्नी इससे दुखित हुई

और वह स्वयं भी अमर से कुछ हटने लगी। उधर आत्मानंद क्रांति के पथ पर चल रहे थे। अमर शांति का पुजारी था। जनता इसे क्या समझे। आत्मानंद की बातों से गाँववाले अधिक प्रभावित हुये। अमर को बड़ा दुख हुआ। मुन्नी और सलोनी अमर की नीति का समर्थन करती हैं। मुन्नी के प्रेम का परिचय हमें इसी स्थल पर मिलता है।

पांच—गांधीवादी नीति का मुख्य उद्देश्य पहले विपक्षी को समझाना है। अमर भी पहले जमींदार को समझाना चाहता है। शांतिपूर्वक वह लगान की समस्या को हल करना चाहता है। वह गूदड़ के साथ जमींदार महंत के पास जाता है। जमींदारी ठाठबाट के दृश्य यहाँ देखकर पाठक चकित हो जाता है। पूजा के समय अमर महंत से न मिल सका। रात में ठहरना पड़ा। दूसरे दिन भी मुलाकात न हो पाई क्योंकि नजराना देना जरूरी था। खाली अर्जी पेश करके वह लौट आया। मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। जमींदारों के पास साधारण जनता की पहुँच हो ही नहीं सकती। वह उनका दुख-दर्द कैसे समझे। खैर अर्जी के अनुसार सातवें दिन अमर महंत जी के सामने पहुँच सका। उन्होंने बात की और कहा कि सरकार से सलाह करके कोई हल निकालेंगे। महंत बड़ा चालाक था। कारिन्दों को सख्ती न करने का आदेश देकर, उसने अमर को ठंडा कर दिया। अमर को आंशिक सफलता मिली। जनमत फिर अमर की ओर हो गया। जमींदारों की चालों का अच्छा वर्णन है।

ग्रामीण जनता के शोषण में पहला हाथ जमीनदारों का है। अब दूसरा हाथ देखिये। सरकारी नौकरों का वर्ग भी कम नहीं। जनता के कष्टों को वे सरकार तक पहुँचने नहीं देते। सलीम और गजनवी के वार्तालापों को पढ़कर बड़ा क्षोभ होता है। वे अमरकांत की अर्जी को आगे जाने नहीं देते। साथ ही गजनवी स्वामी आत्मानंद को पकड़ने की सलाह देता है। अमर इन लोगों से मिलता है। वे लोग दिल खोलकर बातें करते हैं। यहाँ पर देश सुधारकों को कर्णधारों का सच्चा चि

देखने को मिलता है। सलीम तहकीकात करने के लिए नियुक्त होता है। संघर्ष धीमा पड़ जाता है क्योंकि जनता को आशा दिखाई देने लगती है। उधर महंत जी ने कुछ छूट दे दी। इसी अवसर पर नैना का पत्र जिसमें सुखदा की गिरफ्तारी की खबर थी, संघर्ष का कारण बन जाता है। शांतिप्रिय अमर क्रांति के लिये उबल पड़ता है। सभा में वह एकाएक अपना भाषण इस प्रकार देता है कि क्रांति की आग जल उठती है। पाठक फिर उत्सुक हो उठता है। अमर की बदलती हुई प्रकृति का चित्र बड़ा व्यंजनात्मक है।

छह—अमरकांत के इस कदम ने संघर्ष को अनिवार्य कर दिया। अधिकारी वर्ग को आश्चर्य हुआ। महंत जी ने चार आने की छूट फिर दे दी फिर भी आन्दोलन न रुका। सरकार दमन में विश्वास करती है। गजनवी ने अमर को गिरफ्तार करने का आदेश दिया। यह काम सलीम को सौंपा गया। एक ओर मित्रता और दूसरी ओर कर्तव्य, सलीम की जान बड़ी मुसीबत में फँस गई। गजनवी का कथन, सरकारी नौकरी की मनोदशा का परिचायक है। उसके कथन में भावी राष्ट्रीयता का संदेश मिलता है। सलीम के हृदय में उमड़ा हुआ संघर्ष बड़ा स्वाभाविक है।

सात—अमरकांत और आत्मानंद आन्दोलन को सफल बनाने में लग गये। उस युद्ध की गंभीरता में ये लोग थोड़ा-बहुत विनोद कर लेते हैं। सलीम अमर को गिरफ्तार करने के लिये गाँव में पहुँच जाता है। वह अमर को क्रांति न करने का उपदेश देता है पर अमर ध्यान नहीं देता। सलीम अमर को मोटर पर बिठाकर बताता है कि तुम्हें गिरफ्तार किया जा रहा है, किसी को बताना नहीं। मुन्नी को भी अमर यह बात नहीं बताता। बस यहीं से दमन चक्र तेजी से चलने लगता है।

आठ—सलीम दुखी था परन्तु अमर प्रसन्न। अमर की गिरफ्तारी का समाचार बंद न रहा। गाँववालों ने मोटर घेर ली। भीषण उपद्रव

की सम्भावना पैदा हो गई। अमर ने सबको शांत रहने और आन्दोलन को चलाते रहने का आदेश दिया। मुन्नी को सबसे अधिक दुख था। प्रेम का यह चित्र भी देखने योग्य है। मुन्नी सबको उत्साहित करती है कि अमर को छुड़ा लिया जाय परन्तु अमर सबको रोक देता है और सलीम के साथ चला जाता है। उपन्यास की कथा को यदि हम अमरकांत के जीवन का चित्रण मान लें, तो यहाँ पर संघर्ष की समाप्ति हो जाती है क्योंकि अगले भाग में अमर और सुखदा का मिलन जेल में हो जाता है। यदि उपन्यास का उद्देश्य आन्दोलन की कथा का वर्णन करना मान लिया जाय तो भी कथा अब अंत की ओर चलती दिखाई देती है।

पाँचवाँ भाग

एक—इस अध्याय में लेखक ने उस रंगमंच को तैयार किया है, जिस पर अमर, सुखदा, सलीम और सकीना का मिलन होगा। वह है जेल। सुखदा के जेल का जीवन हम देखते हैं और कैदियों की मनोदशा का अनुभव करते हैं। उसे बार-बार अपने पुत्र और ससुर का स्मरण होता है। समरकांत सुखदा से मिलने आते हैं। यहीं पर सुखदा के जेल चले जाने के बाद की कथा पाठक को मालूम होती है। म्यूनिसिपैलिटी की उस जमीन के लिए आन्दोलन जारी है। उसका नेतृत्व बुढ़िया पठानिन कर रही है। नैना की बुरी दशा है, पति ने दूसरे विवाह का निश्चय किया है। यहीं पर सुखदा को खबर मिलती है कि अमरकांत भी पकड़ लिया गया है। समरकांत यह समाचार सुनाते हैं। सुखदा अब अपने पति के महत्व को अच्छी तरह समझने लगी है। इस प्रकार अमर और सुखदा के मिलन की भूमिका समाप्त हो जाती है। समरकांत और सुखदा दोनों अमर के अवगुणों को भूल जाते हैं।

दो—कथा का मुख्य केंद्र सब जगह से हट कर जेल में जाता है। सुखदा की सेवा के लिये मुन्नी जेल में नियुक्त होती है। अमर के जेल

जाने के बाद, मुन्नी भी पकड़ ली गई थी। मुन्नी के साथ जेल में जिस प्रकार दुर्व्यवहार होता है, यह तत्कालीन जेलों की दुर्दशा का स्मरण कराता है। सुखदा और मुन्नी का परिचय होता है। मुन्नी की बातों से सुखदा के मन का मैल दूर हो जाता है और वह फिर अमर पर श्रद्धा करने लगती है। इस पर उपन्यास धीरे-धीरे समाप्ति की ओर चलता हुआ दिखाई देता है। मुन्नी के द्वारा गाँव में फैले हुये आन्दोलन का समाचार उसे मिलता है। मुन्नी के साथ सुखदा जेल की नीची श्रेणी में रहने के लिये चली जाती है। वह भी अमर का अनुकरण करना चाहती है।

तीन—समरकांत अमर के गाँव में जाते हैं। वहाँ की दुर्दशा देखकर उन्हें बड़ा दुख होता है। सलोनी पर पड़ने वाली मार के दाग देखकर उनका हृदय उमड़ पड़ता है। वे स्वयं सलीम से मिलने जाते हैं और उसे खूब खरी-खोटी सुनाते हैं। समरकांत भी उसी मार्ग के पथिक बन जाते हैं जिस पर अमर चल रहा था। अमर की यह सबसे बड़ी विजय है। उपन्यास में व्याप्त संघर्ष यहीं से बिल्कुल शांति की ओर बढ़ता है। समरकांत सलीम को भी किसानों की दुर्दशा का हाल सुनाकर प्रभावित कर देते हैं। यही नहीं, यहाँ पर दोनों एक आसन पर बैठकर भोजन करते हैं। हिंदू-मुस्लिम एकता का यह दृश्य देखने योग्य है। संघर्ष में पड़े हुए दो विरोधी दलों में मेल-मिलाप होने लगता है।

चार—सलीम, समरकांत के साथ जाकर स्वयं गाँव वालों की हिम्मत बँधाता है। सलोनी के मन का क्रोध दूर हो जाता है। वह उनकी सहायता के लिये कुछ रकम भी दान देता है। गाँधीवाद की विजय के नमूने हमें सर्वत्र देखने को मिलते हैं। पूँजीवादियों और नौकरशाही की बदली हुई मनोवृत्ति हमें इस अध्याय में देखने को मिलती है।

पाँच—सुखदा और अमर के मिलन की तैयारी लेखक ने करा दी है। सलीम अब बदल चुका था। उसके प्रयत्नों से अमर का तबादला लखनऊ हो जाता है। वहीं सुखदा भी थी।

छः—यह परिच्छेद प्रासंगिक है। कथा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। अमर लखनऊ जेल में आजाता है। काले खाँ भी यहीं था। हम जानते हैं कि वह दुष्ट, गुण्डा और दुश्चरित्र था। जेल के काले खाँ, जेल के बाहर वाले काले खाँ में हम बड़ा परिवर्तन देखते हैं। उसका हृदय शुद्ध हो गया है। उसे सत्य और ईश्वर पर पूर्ण विश्वास है। उसकी सहनशीलता की हद नहीं। कठोर परिश्रम करने पर भी वह मस्त रहता है। उस पर जेल में बेहद मार पड़ती है। वह मरणासन्न होने पर भी, कैदियों द्वारा जेलर को दंड देने की योजना का विरोध करता है और शांति के साथ मर जाता है। काले खाँ को बीच में लाकर लेखक ने जेल में होने वाले अत्याचारों का पर्दा फाश किया है। यही इस परिच्छेद का महत्व है। कथा की दृष्टि से यह अनावश्यक है।

सात—उपन्यास की कथा धीरे-धीरे अपनी आखिरी मंजिल की ओर जा रही है। सलीम में बड़ा परिवर्तन होजाता है। उसने गाँववालों के पक्ष में अपनी रिपोर्ट दे दी। गजनवी को आश्चर्य हुआ। सलीम नौकरी से निकाल दिया गया। सलीम के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो गया। वह खुलकर राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल बनाने में जुट गया। यही नहीं, जब गाँव वालों के मवेशियों की कुर्की होने लगी तो उसने घोष को ललकारा और गाँव वालों की रक्षा की। इस्लाम के सच्चे अर्थ पर उसके विचार सराहनीय हैं। पुलिस अफसर से उसका द्वन्द्व युद्ध होता है। और वह गिरफ्तार हो जाता है।

आठ—अमरकांत के चरित्र-विश्लेषण में, यह परिच्छेद अपना निजी महत्व रखता है अमर स्वयं आत्मनिरीक्षण करता है और अपनी दुर्बलताओं का उसे पूर्ण आभास हो जाता है। सलीम भी इसी जेल में अमर से मिलता है। सलीम के द्वारा उसे बाहर की घटनाओं का पता चलता है। मुख्य बात यह थी कि सकीना ने गाँव में जाकर सलीम की जगह ले ली। अमर अब शांति का पुजारी था। यहाँ पर

गाँधीवाद पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। यथार्थ और आदर्श दोनों पक्षों का निरूपण सलीम और अमर के वार्तालाप द्वारा किया गया है।

नौ—गाँव के आन्दोलन में पड़कर पाठक 'शहर' को भूल जाता है। सेवाश्रम के लिये म्यूनिसिपैलिटी की भूमि के लिये वहाँ संघर्ष चल रहा था। वहाँ का नेतृत्व पठानिन कर रही थी। वह भी गिरफ्तार हो गई। टूटे हुये बाँध वाली मुक्त नदी की तरह जनता उमड़ चली। लाला समरकांत नेतृत्व करने लगे और पकड़े गये। रेणुका देवी भी जेल भेज दी गई। डाक्टर शांतिकुमार भी पकड़ लिये गये। अंत में नैना बागडोर सँभालती है। वह भाषण देती है और राष्ट्रीय गान गाते हुये भीड़ के साथ म्यूनिसिपैलिटी की ओर चली। उधर म्यूनिसिपल भवन में सभा हो रही थी। दमन में विश्वास करने वाले दल की विजय हुई। इसी समय खबर पहुँची कि नैना को उसके पति ने गोली से मार डाला। बस यहीं से पाँसा पलट जाता है। सभी सदस्य इस बात का समर्थन करते हैं कि जमीन सेवाश्रम को दे दी जाय। हाफिज हलीम जनता को रोक कर यह समाचार सुनाते हैं। नैना के प्राणोत्सर्ग ने संघर्ष को समाप्त कर दिया। इस परिच्छेद में प्रेमचन्द प्रचारक के रूप में दिखाई देते हैं। यह खटकने वाली बात है।

दस—उपन्यास समाप्ति पर है। यह परिच्छेद उपसंहार मात्र है। अंत सुखांत है। सारी समस्यायें हल हो जाती हैं। जनता की विजय हो गई। अमर और सुखदा, सलीम और सकीना का मिलन हो जाता है। नैना का दुखद अंत एक गंभीरता पैदा कर देता है। दृश्य जेल का है। यहाँ पर सभी पात्र इकट्ठे हो जाते हैं। सकीना और सुखदा की बातों से पता चल जाता है कि दोनों का दिल साफ हो गया है। अमर ने स्वयं सकीना को सलीम की ओर प्रेरित किया था और सकीना संतुष्ट भी है। सभी मिलकर प्रसन्न हैं; परन्तु नैना की मृत्यु सभी को खल रही है। पिता को अपने मार्ग का पथिक बना कर अमर को बड़ी प्रसन्नता हुई। मुन्नी का जीवन निराशापूर्ण ही रहा। धनीराम के

प्रयत्नों से गाँव का आन्दोलन भी सफल होता है। अंत में उपन्यास भर के सारे पात्र इकट्ठे होकर खुशी मनाते हैं। मुन्नी को अमर के परिवार में रहने की आज्ञा मिल जाती है। बस उपन्यास समाप्त हो जाता है।

प्रश्न—'कर्मभूमि' के कथानक की परिचयात्मक आलोचना कीजिए।

उत्तर—कथा सामग्री—उपन्यास मानव जीवन की कथा है। यह कथा एक प्रकार से घटनाओं का संकलन है। यह संकलन कई प्रकार से किया जा सकता है; परन्तु किसी न किसी रूप में घटनाओं का होना आवश्यक है। ये घटनायें दो प्रकार की हो सकती हैं, एक तो वे घटनायें जो भौतिक जगत् से सम्बन्ध रखती हैं और दूसरी वे, जो मानसिक जगत् से सम्बन्ध रखती हैं। भौतिक जगत् में मनुष्य का मनुष्य से मिलन होता है, विच्छेद होता है, युद्ध होता है, संधि होती है। एक मनुष्य का अनेक मनुष्यों से संघर्ष होता है। मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों से भी संघर्ष कर सकता है-जैसे समुद्र, हवा, बीमारी आदि से। इसी प्रकार मनुष्य के मानस्‌जगत् में भी संघर्षमयी घटनायें घटित होती हैं। प्रेम और घृणा जब एक ही वस्तु पर केंद्रित होते हैं, तो संघर्ष की सृष्टि हो जाती है। इसी प्रकार दया और क्रोध, स्वार्थ और त्याग के भावों के विरोधों से मानसिक जगत् में घटनाओं की उत्पत्ति हो जाती है। इन्हीं घटनाओं के आधार पर उपन्यास का महल खड़ा होता है। उपन्यासकार कथा वस्तु का निर्माण करने के लिये घटनाओं का चयन करता है। 'कर्मभूमि' में भी अनेक घटनाओं का उपयोग हुआ है। उनमें मुख्य ये हैं:—अमरकांत और सुखदा के विचारों में मतभेद, समरकांत और अमरकांत के विरोधी विचारों के कारण आये दिन वाद-विवाद होना, अमर और सकीना में प्रेम हो जाने के कारण अमर का गृह-त्याग, मुन्नी का सतीत्व हरण, अँगरेजों की हत्यायें, मुकदमा आदि, अछूतों के मंदिर प्रवेश को लेकर गोलीकांड, सुखदा का नेतृत्व, गाँवों में अमर द्वारा जागृति का पैदा किया जाना, सेवा-

श्रम के लिये म्यूनिसिपैलिटी की भूमि हस्तगत करने के लिये आन्दोलन और नैना की मृत्यु आदि। जिस प्रकार ईंट, चूने और लकड़ी से इमारत तैय्यार की जाती है, उसी प्रकार इन घटनाओं के सहारे प्रेमचंद जी ने 'कर्मभूमि का महल' खड़ा किया है।

कथा-सामग्री एकत्रित करना आसान काम नहीं। एक अनुभवी लेखक ही कथा-सामग्री आसानी से प्राप्त कर सकता है। जीवन के अनेक क्षेत्र हैं और ज्ञान की अगणित शाखायें हैं। राजनीति, दर्शन, धर्म, साहित्य, चिकित्सा, विज्ञान तथा अन्य कितने ही क्षेत्रों में मानव जीवन की धारा विभिन्न रूपों में बहती दिखाई देती है। जिस क्षेत्र में लेखक अपना जीवन व्यतीत करता है, उसी से वह अपनी कथा-सामग्री चुनता है। कथा-सामग्री के चयन में प्रत्यक्ष और काल्पनिक दोनों प्रकार के अनुभवों की आवश्यकता है। प्रतिभावान लेखक ही दोनों प्रकार के अनुभव प्राप्त कर सकता है। प्रेमचंद जी ऐसे ही लेखक हैं। स्वयं उन्होंने जीवन में अनेक कठिनाइयाँ झेलीं, मानव-स्वभाव का परिचय उन्हें इसलिये मिला कि उन्होंने विभिन्न समाजों में और विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के साथ जीवन बिताया था। उनके व्यापक अनुभव का पता उनकी कथा-सामग्री से चलता है। गाँवों के झोपड़ों, कुली और मजदूरों की गंदी कोठरियों से लेकर ऊँची अट्टालिकाओं और राजभवनों तक उनकी पहुँच है। देश और काल, समाज और परिवार सभी जगह घटित होने वाली घटनाओं का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव है। उपर्युक्त घटनायें इस बात का प्रमाण हैं। द्विज जी कहते हैं:—

"वे केवल पारिवारिक जीवन का चित्र या किसी सम्प्रदाय विशेष की दुरवस्थाओं का वर्णन उपस्थित करके ही अपना काम नहीं पूरा कर लेते, अपने विस्तृत समाज और विशाल राष्ट्र की व्यापक एवं गंभीर समस्याओं पर पूरा-पूरा प्रकाश डालते हुये, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में विभक्त सांसारिक जीवन की विशद व्याख्या करना भी उनका उद्देश्य रहता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ये जीवन व्यापार

के प्राय: सभी क्षेत्रों से कथा-सामग्री का संचय करते हैं। किसान, मजदूर, जमींदार, राजा, रंक, साधु, चोर, पुलिस, हाकिम, वकील, विद्यार्थी, अध्यापक, राजनीतिज्ञ, धर्मनीतिज्ञ, सुधारक, प्रचारक, देश सेवक, पंडे, गुंडे आदि सभी प्रकार के लोगों की जीवन घटना के रंग-बिरंगे चित्र खींच कर रख देते हैं।

(प्रेमचंद की उपन्यास कला : ज० प्र० 'द्विज')

प्रेमचंद जी ने जिन घटनाओं को चुना है, वे इस संसार की वास्तविकता के घेरे के अंदर घटित होने वाली हैं, उन्हें पाठक चाहे तो स्वयं देख सकता है। कोई भी घटना ऐसी नहीं, जिस पर अविश्वास किया जा सके। कर्मभूमि में चित्रित आन्दोलन तो वर्तमान युग में भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलनों की प्रतिलिपि है। अमर और सकीना का-सा अवैध प्रेम-सम्बन्ध कभी भी अखबार में पढ़ सकते हैं। गाँवों में होने वाले अत्याचारों से सभी अवगत हैं। संक्षेप में बात यह है कि प्रेमचंद जी घटनाओं को वास्तविकता की कसौटी पर कस कर पहले परख लेते हैं, तब उन्हें उपन्यास में स्थान देते हैं।

घटनाओं के चुनाव में प्रेमचंद जी ने आदर्शवादी दृष्टिकोण भी अपनाया है। जीवन के दो पक्ष होते हैं—स्वर्गीय, नारकीय। मनुष्य में देवत्व और पशुत्व दोनों तत्वों का सम्मिश्रण है। प्रेमचंद जी ने वास्तविकता का ध्यान रखते हुये मनुष्य की स्वार्थपरता, वासना और विनाशात्मक प्रवृत्ति का चित्र अवश्य खींचा है परंतु उनकी केवल झलक आप देख सकते हैं। उनका नग्न रूप दिखलाने से वे हिचकते हैं। "इसमें संदेह नहीं इन्होंने 'स्वर्ग' भी बनाये हैं और 'नरक' भी—अच्छी घटनाओं का भी वर्णन किया है और बुरी घटनाओं का भी। किन्तु इनके 'नरक' को देखकर हृदय में कुत्सित लालसाओं का, अवांछनीय इच्छाओं का, उदय नहीं होता।" उदाहरण के लिये, मुन्नी को दो गोरे जबरदस्ती पकड़कर एक खेत में ले जाकर बलात्कार करते हैं

परन्तु यह बात स्पष्ट रूप से वे नहीं कहते । मुन्नी के लँगड़ा कर चलने और उसकी मनोदशा से ही हम यह बात समझ लेते हैं । इसी प्रकार अमर और सकीना एकांत में कई बार मिलते हैं परन्तु उस एकांत में कुछ ऐसी गंभीर बातें आ जाती हैं कि वासना दब जाती है । एक बार ऐसा अवसर आ भी जाता है, तो बुढ़िया पठानिन को प्रवेश कराकर प्रेमचंद जी अश्लीलता के प्रसंग को बचा जाते हैं जिसमें पाठक के मन पर कुत्सित प्रभाव न पड़े । वे हमेशा ऐसी घटनायें चुनते हैं जो शिक्षा-प्रद होती हैं और जिनका हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़ता है । साथ ही वह मनुष्य का उन्नयन करती हुई उसे प्रेरणा देती है ।

घटनाओं का उपयोग करने की कला—घटनाओं का अंधाधुंध संकलन मात्र कथावस्तु नहीं कहला सकता । घटनाओं का उपयोग करना एक विशेष कला है । जीवन में साधारण और असाधारण सभी प्रकार की घटनायें घटित होती हैं । चतुर उपन्यासकार केवल उन घटनाओं को उपन्यास में स्थान देता है, जो समस्त मानव समुदाय के दैनिक जीवन की समस्याओं से संबंध रखती हैं । जिन उपन्यासों में ऐसी घटनायें स्थान पाती हैं, वही जनप्रिय हो जाते हैं । प्रेमचंद जी के उपन्यासों की जयप्रियता का कारण यही है कि उनमें हम अपनी समस्याओं का समाधान देखते हैं । परिवार में होने वाले कलह का जो पति-पत्नी, पिता और पुत्र के बीच होता रहता है, चित्र कर्मभूमि में हमें देखने को मिलता है । प्रेमचंद जी ने कर्मभूमि में इसी प्रकार की महत्वपूर्ण घटनाओं को उपयोग में लाकर स्वाभाविकता पैदा करदी है ।

घटनाओं के उपयोग में लेखक को बड़े संयम से काम लेना पड़ता है । अनावश्यक घटनाओं को जान-बूझ कर ठूँस देने से कथानक में शिथिलता आ जाती है । प्रेमचंद जी में कहीं-कहीं पर इस "कलात्मक संयम" की कमी दिखाई देती है । "इसका कारण यह है कि इनकी अद्भुत् वर्णनशक्ति कल्पना के विस्तृत प्रांगण में पहुँचते ही बहुत अधिक उत्तेजित हो उठती है ।" वर्णनों के प्रलोभन को यह रोक नहीं

पाते। शरत्‌चंद्र की तरह 'थोड़े में बहुत कहने की कला' का इनमें अभाव है। जैसे जब अमर महंत जी से मिलने जाता है, तो वहाँ जाकर जो दृश्य देखता है, उसका वर्णन लम्बा है। कहीं-कहीं पर तो अतिशयोक्ति दोष आ गया है। "इस मौसम में परवल कितने महँगे होते हैं, पर यहाँ वह भूसे की तरह भरा हुआ है। एक पूरा कमरा तो केवल परवलों से भरा हुआ था × × × इस मौसम में यहाँ बीसों झावे अंगूर के भरे थे।" इसी तरह काले खाँ की जेल वाली घटना को जान-बूझ कर घुसेड़ा गया है। जेल में उनके स्वभाव में परिवर्तन होना और उसकी दुखद मृत्यु का वर्णन यों तो स्वाभाविक है पर कला की दृष्टि से इस घटना का सारे कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं। बुढ़िया पठानिन और सकीना जैसी नारियों का नेतृत्व (यद्यपि आन्दोलन के युग में इस प्रकार की घटनायें अवश्य हुईं) बहुत अधिक स्वाभाविक नहीं जान पड़ता। मुन्नी का मुकदमें से छूट कर सम्मान प्राप्त करते हुये भी और पति द्वारा समझाये जाने पर भी अपने को इतना हीन समझना, और दूसरी ओर अमर से प्रेम करने लगना, स्वाभाविकता से परे है।

कहीं-कहीं घटनाओं के वर्णन में असावधानी भी हो गई है। परस्पर विरोधी वर्णन आ गये हैं। एक ओर बुढ़िया पठानिन कहती है कि 'बेटा, सब हैं, बेटे हैं, पोते हैं, बहुयें हैं, पोतों की बहूयें हैं आदि, परन्तु जब अमर उसके घर जाता है तो वहाँ सकीना के अतिरिक्त दूसरा कोई नजर नहीं आता। इसी प्रकार मुन्नी जब मुकदमें से छुट्टी पाकर चली थी, तो उसके पास कुछ न था परन्तु वही मुन्नी जब लखनऊ में उतरती है, तो उसके पास कुली के सर पर ले जाने लायक सामान कहाँ से आ गया यह नहीं समझ में आता। ऐसे वर्णन असावधानी के कारण आ गये हैं।

श्री विनोदशंकर व्यास ने अपनी 'उपन्यास कला' नामक पुस्तक में घटनाओं के उपयोग की कला के विषय में लिखा है कि घटनाओं का प्रयोग कई ढंग से किया जा सकता है। (१) उपन्यास के प्रधान पात्र

के चारों ओर घटनायें केंद्रित कर दी जाती हैं अर्थात् पात्र के व्यवहारों के आधार पर घटनायें चुनी जाती हैं। (२) किसी-किसी उपन्यास में कई कथायें एक सूत्र में आवद्ध कर दी जाती हैं। (३) कुछ उपन्यासकार घटनाओं के उपयोग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना पसंद करते हैं। किसी एक घटना को कारण मानकर अन्य घटनाओं को परिणाम स्वरूप दिखाते हैं। सभी घटनाओं के बीच के कार्य-कारण का सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं।

कर्मभूमि में प्रथम प्रकार की शैली का उपयोग हुआ है और कहीं-कहीं पर दूसरी प्रणाली का भी समन्वय दिखाई देता है। कर्मभूमि का प्रधान पात्र अमरकांत है। उपन्यास की सारी घटनाओं का उद्‌गम अमर के जीवन से ही होता है। अमर के स्वभाव के कारण ही सुखदा और समरकांत असंतुष्ट हैं। अमर के कारण ही सकीना के जीवन में विचित्र परिवर्तन होता है। वही सुधारवादियों को प्रेरणा देता है—सुखदा, शांतिकुमार, सलीम और आत्मानंद समय-समय पर उसी का अनुसरण करते हैं। गांवों में फैलती हुई क्रांति की अग्नि, उसी ने जलायी। जब वह अपने जीवन के संघर्षों से मुक्त होकर शांति की ओर अग्रसर होने लगता है, तभी उपन्यास का अन्त हो जाता है। उपन्यास उसी से आरम्भ होता है और उसी की सफलता के साथ ही कथा का अंत हो जाता है। मुन्नी की कथा स्वतंत्र है। उसका जीवन एक अलग दिशा में बहता है। लेखक ने उसे अमर के साथ मिलाकर कथानक को एकत्व देने का प्रयत्न किया है।

उपन्यास में 'संयोग' के प्रयोग पर बहुत से आलोचक आपत्ति करते हैं। उनका कहना है कि संयोग के आधार पर मिलन, वियोग या मृत्यु आदि घटनाओं का दिखलाना अस्वाभाविकता उत्पन्न करता है परन्तु 'संयोग' जीवन में आते ही नहीं, यह कथन भी अत्युक्तिपूर्ण है। बहुत सी घटनायें संयोग से ही घटित हो जाती हैं। प्रेमचन्दजी ने 'संयोग' का प्रयोग निःसंकोच रूप से किया है। मुन्नी की कथा में 'संयोग' का

खुलकर प्रयोग हुआ है। बलात्कार के समय अमर, सलीम और शांतिकुमार संयोग से ही जा पहुँचते हैं। मुन्नी को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते संयोग से ही उसका पति हरिद्वार जा पहुँचता है। अमर संयोग से ही उस गाँव में जाकर पहुँचता है जहाँ मुन्नी पहले से मौजूद थी।

घटनाओं के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात याद रखनी चाहिये। घटनाओं में एक शक्ति होती है। मनुष्य के स्वभाव-निर्माण, व्यक्तित्व विकास और जीवन-स्रोत के बदलने में घटनाओं का बहुत कुछ हाथ है। कुछ घटनायें जीवन में इस प्रकार घटित होती हैं कि मनुष्य उनके वशीभूत होकर ही काम करता है। घटनाओं की इस शक्ति की, साथ-ही-साथ एक सीमा होती है। मनुष्य में भी कुछ दैवी शक्ति होती है। वह घटनाओं पर काबू पाने की शक्ति रखता है। अत: स्वाभाविकता इसी में है कि 'पात्र' और 'घटना' इन दोनों को स्वतंत्र सत्ता के रूप में मानकर, उपन्यास में घटनाओं का विवरण इस प्रकार दें कि कभी पात्र परिस्थितियों से टक्कर लेता हुआ विजयी के रूप में दिखाया जाय और कभी परिस्थितियों की बाढ़ में उसकी स्थिति बिना पतवार की नाव के समान दिखाई जाय। कथानक में तभी जान आ जाती है क्योंकि हम नित्यप्रति संसार में इसी वास्तविकता का अनुभव करते हैं। कभी मनुष्य परिस्थिति पर हावी हो जाता है और कभी परिस्थिति मनुष्य पर। इस तथ्य को प्रेमचन्द जी अच्छी तरह समझते हैं। कर्मभूमि में कुछ घटनायें ऐसी हैं, जिनके बहाव में कई पात्र बह जाते हैं। सुखदा और समरकांत भौतिकवादी हैं, उन्हें अमर की आध्यात्मिकता से विरोध है। घर में रोज ही अमर की आलोचना होती है। बाद में हम देखते हैं कि भारत में फैलती हुई राजनीतिक जागृति से और अमर की दृढ़ता से प्रभावित होकर ये दोनों पात्र अपने विचार बदल देते हैं। यही नहीं, समर बुढ़ापे में सारी छूत-छात भूलकर सलीम के साथ भोजन करते हैं और आन्दोलन का नेतृत्व करके जेल चले जाते हैं। दूसरी ओर कुछ पात्र ऐसे हैं जो घटनाचक्र को अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से

दूसरी ओर मोड़ देने में सफल होते हैं। 'अमर' लाख विरोधी होने पर भी अपनी आध्यात्मिकता बनाये रखता है। 'सकीना' अपने प्रेम मार्ग से कभी विचलित नहीं होती। परिस्थिति और पात्रों के संतुलित संघर्ष के द्वारा कथानक में जान आ जाती है। कर्मभूमि में यह चीज देखने को अवश्य मिलती है।

कर्मभूमि के कथानक का विकास—उपन्यास शास्त्रियों ने कथानक के विकास और अंत की पाँच सीढ़ियाँ बताई हैं। प्रथम सीढ़ी को प्रस्तावना भाग कहते हैं। इस भाग में कथा का बीजारोपण किया जाता है। उपन्यास के प्रमुख पात्रों का प्रवेश करा दिया जाता है और उनके चरित्र की रूप रेखा खींच दी जाती है। यह भाग परिचयात्मक होता है। 'कर्मभूमि' के लेखक ने उपन्यास को पाँच भागों में बाँटकर यह सिद्ध कर दिया है कि यह उपन्यास के इस विकास-सिद्धांत का समर्थक है। प्रथम भाग, कथा का प्रस्तावना भाग है। प्रत्येक अध्याय को पढ़ते जाइये, आपका विशिष्ट पात्रों से परिचय होता जायगा। अमरकांत, सलीम, प्रो० शांतिकुमार, समरकांत, सुखदा, नैना और सकीना सभी आकर अपना परिचय प्रथम भाग में दे देते हैं। उनके सम्बन्ध में बहुत-कुछ लेखक ने लिख दिया है। और कुछ आप उनके कथोपकथनों से जान लेते हैं।

कथा का प्रस्तावना भाग लम्बा है। इसमें कुल १८ अध्याय हैं। कथा का बीज अमर की पारिवारिक परिस्थितियों के बीच बोया गया है। वह एक आदर्शवादी नवयुवक है और उसकी अपनी पत्नी और अपने पिता से नहीं बनती। उस विरोधी वातावरण में रह कर उसके मन में एक भीषण क्षोभ और असंतोष पैदा हो जाता है। उसके हृदय में प्रेम और सहानुभूति की गहरी प्यास है। बस, यही उसे सकीना पर आसक्त होने पर बाध्य करती है। एक पत्नी के रहते हुए, फिर जब सकीना मुसलमान है, अमर उसे प्राप्त नहीं कर सकता। प्रेम की बात खुल जाने पर वह निर्भय होकर, सकीना को प्राप्त करने का ध्येय बना

कर घर छोड़ कर चल देता है। यही कथा का प्रारम्भ है। बस, यहीं पर प्रस्तावना भाग समाप्त हो जाता है।

कथा विकास की दूसरी सीढ़ी पर संघर्ष की सृष्टि लेखक करता है। 'कर्मभूमि' का दूसरा भाग इसी दृष्टिकोण से लिखा गया है। अमर की कर्मभूमि, जहाँ वह परिस्थितियों से टक्कर लेता है, इसी भाग में निर्मित हुई है। अमर निहत्था होकर घर-बार छोड़ता है, लखपती का पुत्र होकर भी वह एक साधारण मजदूर के रूप में अपनी जीवन-यात्रा पर चलना प्रारम्भ करता है। उसे परिस्थिति से महीनों संघर्ष करते हुए गाँव-गाँव में खाक छाननी पड़ती है, तब कहीं वह एक गाँव में टिक पाता है। यही उसकी 'कर्मभूमि' है। यहाँ पर उसे दो प्रकार के संघर्ष का सामना करना पड़ता है। एक ओर उसे गाँव में फैली निरक्षरता, अज्ञान, छुआछूत, आदि का सामना करना पड़ता है, दूसरी ओर उसके मन में दो विरोधी भावों में संघर्ष होता है। कभी उसे सुखदा का ध्यान होता और कभी उसके स्वप्नों में सकीना विचरण करने लगती थी। इसी बीच में मुन्नी उसके भाव-जगत् पर अधिकार करती हुई दिखाई देती है। इस प्रकार इस दूसरी सीढ़ी पर आन्तरिक और वाह्य दोनों प्रकार के संघर्ष आरम्भ होते हैं। पात्रों के चरित्र पर अधिक प्रकाश पड़ता है। हम उनके बारे में और भी अधिक जानकारी प्राप्त करते हैं।

कथा विकास की तीसरी स्थिति वह है जहाँ पर संघर्ष द्रुत गति से बढ़ता जाता है और अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। पात्र और परिस्थितियाँ पूरी शक्ति के साथ संघर्ष करती हैं। पाठक बड़े अस-मंजस में पड़ जाता है, वह यह नहीं समझ पाता कि कौन पक्ष जीतेगा। उत्सुकता बढ़ती जाती है। समस्या भीषण रूप धारण करती जाती है परन्तु इस सीढ़ी के अंत तक पाठक को उसके हल का कुछ आभास मिलने लगता है। कर्मभूमि का तीसरा भाग ऐसा है, जिसके अंत तक संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। अमर का सुखदा से विच्छेद

होता है, वह सकीना की ओर आकर्षित होता है, उसे पाने की इच्छा रखते हुए भी वह उसे पाने में असमर्थ है। यह एक बड़ी समस्या बन जाती है और संघर्ष की गहराई बढ़ जाती है। अमर का गृह त्याग भी इसका कोई हल नहीं। उधर सुखदा भी पति की ओर से इतना विरक्त हो जाती है कि दोनों के मिलने की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। सकीना भी अपने विवाह न करने के निश्चय पर दृढ़ रहती है। यहीं पर संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है, परन्तु तुरन्त ही इसके वाद हम देखते हैं कि सुखदा अपने पति के मार्ग की अनुगामिनी बन जाती है और उसे पति पर श्रद्धा होने लगती है। दूसरी ओर सलीम सकीना की ओर आकृष्ट हो जाता है और उससे वह विवाह का प्रस्ताव करता है। यहीं पर संघर्ष के बढ़ाव का रुख खतम होकर, उतार की ओर हम कथा को बढ़ते हुए पाते हैं, क्योंकि इन दोनों घटनाओं ने अमर और सुखदा के मिलन का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

कथा के विकास की चौथी स्थिति में यह स्पष्ट हो जाता है कि संघर्ष समाप्ति की ओर बढ़ रहा है। दो प्रतिद्वंन्द्वी पक्षों में एक पक्ष विजयी होता हुआ दिखाई देता है। यद्यपि हारनेवाला असफल प्रयत्न करता जाता है परन्तु पाठक भावी परिणाम का अनुमान कर ही लेता है। कर्मभूमि का चौथा भाग, इसी चौथी स्थिति को लेकर लिखा गया है। अमर अपनी विरोधी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने लगता है। उसका हार्दिक अन्तर्द्वन्द्व जो 'सुखदा' के प्रति असंतोष को लेकर प्रारंभ हुआ था, समाप्त होने लगता है। सुखदा और समरकांत दोनों का हृदय-परिवर्तन, अमर की विजय है। गाँव में रहकर अमर कुछ रचनात्मक कार्य करता है। उसके फलस्वरूप वह जागृति पैदा करने में सफल होता है। गाँधीवादी विचारधारा की सफलता के चित्र भी हमें दिखाई देते हैं। अमर के प्रयत्नों से महन्त जी लगान की थोड़ी छूट भी दे देते हैं और सरकार का ध्यान भी गाँव की दुर्दशा की ओर आकृष्ट होता है।

विकास की पाँचवीं स्थिति में संघर्ष समाप्त हो जाता है। इसे उपसंहार कहते हैं। संघर्ष के परिणाम पर टीका-टिप्पणी होती है, यदि कोई समस्या है, तो उसका निश्चित हल निकल आता है। कर्म-भूमि के, पाँचवें भाग में देखते हैं कि अमर का जीवन-युद्ध समाप्त हो जाता है, उसकी जीवन-समस्या का हल निकल आता है। पति-पत्नी की विरोधी विचारधाराओं में एक साम्य पैदा हो जाता है, इसलिये दोनों का स्थायी मिलन होता है। अमर घर को छोड़कर भाग गया था, इसलिये सीधे घर लौट आने में आत्मसम्मान को ठेस लगने का प्रश्न था। इसलिये सुखदा और अमर का मिलन जेल में होता है। सकीना की समस्या भी हल हो जाती है। सुखदा और अमर के मिलन के साथ साथ सलीम और सकीना का विवाह हो जाता है। मुन्नी को अमर से प्रेम था, परन्तु वह था सात्विक। उसे भी अमर के परिवार में रहने का अवसर मिलता है। समरकांत और अमरकांत में भी समझौता हो जाता है और यहीं से उपन्यास का सुखद अन्त हो जाता है।

कथानक में रोचकता और उत्सुकता—कथा वर्णन की सबसे उत्तम शैली वह है, जिसमें पाठक को आदि से लेकर अन्त तक जिज्ञासा बनी रहे, उसकी समझ में यह न आये कि अब क्या होने वाला है। इस प्रकार की वर्णन-शैली के लिये, लेखक पहले से ही कुछ सुखद या दुखद घटनायें वर्णन करता है जिसकी संभावना पाठक नहीं करता, बस उसे कारण जान की जिज्ञासा होने लगती है। कभी-कभी लेखक ऐसी घटनाओं का समावेश कर देता है, जिनकी पाठक कल्पना भी नहीं कर सकता। इससे कथानक रोचक बन जाता है, अस्वाभाविकता भले ही आ जाय। प्रेमचंद जी ने 'कर्म-भूमि में कहीं भी इस प्रणाली को नहीं अपनाया है। न तो वे घटनाओं को उलट-पुलट कर प्रयोग में लाते हैं और न वे कल्पना से परे उन दृश्यों को अंकित करते हैं, जो पाठक की आँखों में चकाचौंध पैदा करते हैं। "चारों ओर ज्ञान और अनुभव की आँखें दौड़ाकर, अपनी

कला का निर्माण करने के लिये, ये जो उपकरण एकत्र करते हैं, उनके साथ हमारा पूरा परिचय होता है। यही कारण है कि इनकी कथा-वस्तु हमारी उत्सुकता में किसी प्रकार का नूतन आवेग नहीं ला सकती; बहुत ही शांत, सरल गति से वह हमारे अनुमान के साथ चलती है। कहीं किसी प्रकार के रहस्य में हमें उलझा नहीं रखती। सुप्रसिद्ध बंगाली लेखक शरत्‌चंद्र और प्रेमचंद में यही भेद है। शरत् बाबू के किसी उपन्यास को पढ़ते समय बीच ही में यह अनुमान कर लेना असंभव-सा है कि कहानी कब, कहाँ, कैसे मुड़ जायगी। एक घटना के बाद दूसरी घटना का आगमन इस आश्चर्यपूर्ण ढंग से होता है कि पहले ही से उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार की निश्चयात्मक कल्पना पाठक के मन में हो नहीं सकती। वे औपन्यासिक जादूगर हैं। प्रेमचन्द जी में यह जादू नहीं है। ये अपने पाठकों को इस प्रकार के औत्सुक्यपूर्ण असमंजस में डालकर रख ही नहीं सकते। इनके पात्रों की जीवन स्थिति का, उसके मनोभावों तथा कार्यों का प्रारम्भिक विश्लेषण ही हमें बता देता है कि घटना का अंत कब और किस रूप में होने वाला है। 'अब इसके आगे क्या होगा' इसका संकेत हमें इनके उपन्यासों में बराबर मिलता चलता है; घटना चक्र के दो-ही चार चक्करों के बाद परिणाम के रूप का आभास मिल जाता है।'' (प्रेमचंद की उपन्यास-कला; ज० प्र० 'द्विज') कर्मभूमि का 'अमर' प्रेम और स्नेह के अभाव में पला हुआ नवयुवक है, स्पष्ट पता चल जाता है कि वह कहीं-न-कहीं फँसेगा और अंत में वह सकीना के प्रेम में फँस जाता है। सलीम, राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत है परन्तु अमर और उसके कथोपकथनों से स्पष्ट पता चल जाता है कि वह आगे चलकर नौकरी कर लेगा; इसी प्रकार उसके हृदय में चलते हुये अन्तर्द्वन्द्व से हम अनुमान कर लेते हैं कि वह अपनी नौकरी में ज्यादा दिनों तक न बना रहेगा। कहीं भी अप्रत्याशित घटना नहीं घटित होती। अमर और सुखदा के मिलन के बारे में हम पहले ही निश्चय कर लेते हैं कि ऐसा अवश्य होगा।

पाठक की उत्सुकता बनाये रखने के लिये और कथा की रोचकता की रक्षा के लिये प्रेमचंद जी ने एक दूसरी शैली अपनायी है। यह तो ठीक है कि पाठक सम्भावित घटनाओं का अनुमान कर सकता है पर उस परिणाम तक वह आसानी से नहीं पहुँच पाता। कथा विकास के समय प्रेमचंद जी बराबर नयी-नयी समस्यायें और संघर्ष उपस्थित करते चलते हैं। इससे घटनाओं के बहते हुये प्रवाह में एक रोक पैदा होती है, केवल पाठक की उत्सुकता जाग्रत हो जाती है। प्रारम्भ में ही पाठक यह जान जाता है कि अमर का दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं है, उसे भीषण असंतोष है। सकीना से वह प्रेम करने लगता है, इसी समय अमर के घर शिशु की उत्पत्ति होती है। समस्या उलझ जाती है। शिशु के पैदा होते ही घर में शांति हो जाती है। अमर का मन कारोबार में लग जाता है। जान पड़ता है वह साधारण गृहस्थ की तरह जीवन बिताने लगेगा परन्तु इसी समय मुन्नी उसकी दूकान पर पहुँच कर दो गोरों की हत्या कर डालती है। यह घटना फिर उसे जन-कार्य की ओर घसीट ले जाती है। इस घटना के अंत होते ही' जब कथा का प्रवाह धीमा पड़ता है, तो समरकांत से अमर की झड़प हो जाती है। 'कर्मभूमि' में पग-पग पर इस प्रकार के संघर्षों ने पाठक की जिज्ञासा और उत्सुकता को अंत तक बनाये रक्खा है। पाठक परिणाम जानते हुये भी कथा में रमा रहता है।

पाठक परिणाम का अनुमान करते हुये भी कथा में इसलिये रमा रहता है कि वह देखना चाहता है कि उसका अनुमान सत्य उतरता है या नहीं। जब बराबर आते हुये संघर्ष उसके अनुमानित परिणाम को जल्दी आने से रोकते हैं, तो उसकी जिज्ञासा का बढ़ना स्वाभाविक है।

पाठक की उत्सुकता बनाये रखने के लिये, प्रेमचंद जी मानव के चरित्र की जटिलता का विश्लेषण करते हुये चलते हैं। अमर का नवयुवक-हृदय किस प्रकार अस्थिर है, कुछ समझ में नहीं आता। कभी वह सुखदा से खिचता है और कभी वह उसे अपनाने लगता है।

सकीना पर एक बार वह पूर्ण विश्वास के साथ प्रेम करता है परन्तु अंत में उसका विश्वास डिगने लगता है। मुन्नी को साथ लेकर भाग जाने तक का प्रस्ताव वह कर डालता है परन्तु अंत में सुखदा के त्याग से प्रभावित होकर, वह उससे अच्छी तरह बात भी नहीं करता। पहले वह लगान की समस्या को शांतिपूर्वक हल करने में गौरव समझता है परन्तु सुखदा के जेल जाने की बात सुनते ही, वह वह क्रांति की आग जला देता है। मानव-स्वभाव की यह अस्थिरता पाठक में जिज्ञासा उत्पन्न करती है। इसी प्रकार उनके मनोरजन वर्णन, और अनुभवों में पाठक अपने जीवन की झाँकी देखता है और उन्हीं के सहारे वह अपना वर्णन पढ़ता हुआ कथानक के साथ उलझा रहता है।

४ प्रश्न—'कर्मभूमि' में प्रेमचंद जी की चरित्र-चित्रण कला का सम्यक् विवेचन कीजिए।

उत्तर—प्रेमचंद जी की चरित्र-चित्रण कला अपना विशेष महत्व रखती है, कारण—इनके उपन्यासों की जान चरित्र-चित्रण ही है। कुछ उपन्यास वस्तु-प्रधान होते हैं और कुछ पात्र-प्रधान। जहाँ कथा-वस्तु पर अधिक जोर दिया जाता है, वहाँ पर चरित्र-चित्रण दब जाता है। घटनाओं की भरमार और तीव्रगति से बहती हुई कथा की धारा के साथ पाठक बहने लगता है, पात्रों के चरित्र की ओर वह ध्यान नहीं देता। ऐसे उपन्यासों से साधारण कोटि के पाठकों का मनोरंजन अवश्य होता है पर वे स्थायी साहित्य की चीज़ नहीं होते। प्रेमचंद जी के उपन्यास इसलिये श्रेष्ठ कहे जाते हैं कि उनमें चरित्र-चित्रण प्रधान हैं। उनके पात्र हाड़-मांस के बने जीव जान पड़ते हैं और उनके स्वभाव को पढ़ते समय पाठक यही समझता है कि उनमें वह अपना प्रतिबिम्ब देख रहा है। हम उन पात्रों के साथ हँसते हैं और रोते हैं। इसलिये उच्च कोटि के चरित्र-चित्रण वाले उपन्यास श्रेष्ठ कहे जाते हैं। विलियम हेनरी हडसन ने लिखा है—"मुझे यह कहते हुये तनिक भी संकोच नहीं होता कि उपन्यास के दो

तत्त्वों (कथानक और चरित्र-चित्रण) में चरित्र-चित्रण ही प्रधान है और वे ही उपन्यास उच्चकोटि के माने जाते हैं, जिनमें चरित्र-चित्रण पर अधिक जोर दिया गया है। प्रेमचंद जी ने 'कर्मभूमि' में चरित्र-चित्रण पर ही जोर दिया है। अमर, सुखदा, समरकांत, सलीम और मुन्नी आदि के चरित्र-विश्लेषण, इसका प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूप से प्रेमचंद जी ने उनके स्वभाव का दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की है।

प्रेमचंद जी ने अवश्य ही 'पात्रों' को महत्व दिया है परन्तु उन्होंने 'कथा वस्तु' भी की उपेक्षा नहीं की है। इनके उपन्यासों में इन दोनों ही तत्त्वों का उपयुक्त सम्मिश्रण रहता है; दोनों ही को एक दूसरे पर आश्रित रखकर ये उन्हें अपने-अपने काम में लगाये रहते हैं। घटना-त्रक्र में पड़कर ही पात्रों का चरित्र प्रस्फुटित होता है और पात्रों के चरित्र से ही घटना की सृष्टि होती है। हमारे जीवन में क्षण-प्रतिक्षण जो घटनायें घटित होती हैं, वही परिस्थिति का निर्माण करती हैं। इन घटनाओं के घटित होने में हमारा हाथ है, हमारे मित्रों, सम्बन्धियों और पास-पड़ोसियों का भी। इसलिये ये परिस्थितियाँ आंशिक रूप से हमारे वश में हैं। प्राय: हमीं परिस्थितियों के वश में होते हैं। हम जो कुछ करते हैं, कहते हैं, या सोचते हैं, इन सबका परिस्थिति पर प्रभाव पड़ता है और उनमें परिवर्तन भी हो सकता है। हमें अनेक कार्य परिस्थितियों के वश में होकर करने पड़ते हैं और यहाँ तक कि हमें रहन-सहन, वेष-भूषा आदि में भी अंतर करना पड़ता है। वास्तव में मनुष्य और परिस्थिति में क्रिया और प्रतिक्रिया का सम्बन्ध है। प्रेमचंद जी इस तथ्य को समझते हैं और इस तथ्य का समावेश हमें 'कर्मभूमि' में मिलता है। कुछ पात्र ऐसे हैं (जैसे अमरकांत, सकीना और सुखदा) जो अपने कार्यों द्वारा परिस्थितियों को बदल देते हैं और कुछ पात्र (समरकांत और सलीम), परिस्थितियों के अनुसार बदल जाते हैं।

जिस प्रकार 'मनुष्य' को हाथों से नहीं बनाया जा सकता, उसी प्रकार 'पात्रों' में प्राण भरने की कला अज्ञात है। लेखक केवल अपनी

कल्पना, मानवीय स्वभाव के सूक्ष्म ज्ञान और वाह्य परिस्थितियों की मन पर होनेवाली प्रतिक्रियाओं के अनुभव से पात्रों की सृष्टि कर सकता है, परन्तु पात्रों की सृष्टि करते समय उनके साथ एकाकार हो जाना ही लेखक की प्रतिभा का प्रमाण है। उपन्यास को लिखने के बाद स्वयं लेखक आश्चर्य में पड़ जाय कि मैंने यह सब कैसे लिख डाला। पात्र स्वयं अपनी स्वतंत्र सत्ता प्राप्त कर लेते हैं और अपने बनाने वालों के हाथ की कठपुतली नहीं रह जाते। विलियम मेकपीस थैकरे ने उपन्यासकार की उस शक्ति को जिसके सहारे वह इस प्रकार के स्वतंत्र पात्रों की रचना कर डालता है, ऑकल्ट (occult) के नाम से पुकारा है। यह शक्ति लेखक को आत्मविस्मृत कर देती है और लिखते समय उसके पात्रों से कलम छीन लेती है। थैकरे कहता है—मैं पात्रों को अपने नियंत्रण में नहीं रख पाता, मैं स्वयं उनके हाथों में रहता हूँ, वे जहाँ चाहें, मुझे ले जायँ। पात्रों में प्राण भरना इसी को कहते हैं। इससे पात्रों की सत्ता स्वतंत्र रूप में दिखाई देने लगती है। इस सिद्धान्त के आधार पर प्रेमचंद जी के पात्रों के चरित्र का क्या मूल्य है ?

प्रेमचंद जी ने अपने पात्रों के स्वभाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। हम उनके पात्रों के साथ हँसते हैं और रोते हैं। यह ठीक है परन्तु उनके पात्रों की स्वतंत्र सत्ता कहीं-कहीं पर नष्ट हो जाती है। उनके पात्रों पर उनका नियंत्रण पूरी तरह रहता है। वे जिधर चाहते हैं, उन्हें मोड़ देते हैं। पात्रों के स्वभाव में परिवर्तन परिस्थितियों के प्रभाव से होते हैं परन्तु प्रेमचंद जी ने कहीं-कहीं पर स्वभाव-परिवर्तन का कोई भी कारण नहीं बताया है। 'कर्मभूमि' की मुन्नी के प्रसंग में उन्होंने ऐसा ही किया है। "मुन्नी एक सती साध्वी नारी है। उसके सिद्धान्त इतने ऊँचे हैं कि पर पुरुष द्वारा बलात् अपवित्र की गई अपनी काया के छाया-स्पर्श से भी वह अपने इकलौते बेटे और प्राणप्रिय स्वामी को अलग रखती है।.........उसका सिद्धांत कितना कठोर है...निर्मल है। वह सचमुच अपने पति और पुत्र को

अपना मुँह नहीं दिखाना चाहती।·········मानव चरित्र का यह बहुत ऊँचा आदर्श है।···पर इस परमादर्श के आगे मुन्नी अंत तक खड़ी न रह सकी।···आश्चर्य होता है जब हम, कुछ ही दिनों बाद, सहसा देखते हैं कि मुन्नी अमरकांत के प्रति केवल अपना प्रेम ही नहीं प्रदर्शित करती, प्रत्युत उसे रिझाने के विचार से "कछनी काछे हुये, चौड़ी छाती वाले एक गठीले जवान के साथ हाथ से हाथ मिलाकर, कभी कमर पर हाथ रख कर, कभी कूल्हों को ताल से मटका कर नाचने में उन्मत्त हो रही है।" पता नहीं उसका स्वभाव कैसे बदल गया। इसका कोई भी संतोषजनक कारण कहीं भी नहीं उपस्थित किया गया। इसी प्रकार काले खाँ अव्वल नम्बर का बदमाश है। चोरी करना तो दूर रहा वह चंद पैसों के लोभ में अदालत पहुँच कर जज साहब पर जूते बरसाने के लिये तैयार हो जाता है। दूसरी ओर उपन्यास के अंत में, जेल के अन्दर वह 'गाँधी' का उत्तराधिकारी बन बैठता है। जेलर की ठोकरें उसने सहीं और जब जेल के कैदियों ने प्रतिशोध लेना चाहा, तो वह ईसा की भाँति सहिष्णु होकर अपराधी के प्रति दया प्रकट करता है। यहाँ भी कुछ ऐसा कारण नहीं देखने को मिलता, जिससे इस परिवर्तन के सम्बन्ध में पैदा होने वाली शंका को दूर किया जा सके। चरित्र-चित्रण-कला की दृष्टि से यह दोष है। पात्रों को इच्छानुसार चलाने से स्वाभाविकता को गहरा धक्का लगा है।

विश्लेषणात्मक प्रणाली—प्रेमचंद जी पात्र को प्रवेश कराते समय, उसके स्वभाव के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत परिचय अवश्य दे देते हैं। जिस प्रकार चित्रकार चित्र तैय्यार करने के पहले उसकी एकरूप रेखा तैय्यार कर लेता है और बाद में उसी में रंग भर देता है, उसी प्रकार प्रेमचंद जी अपने पात्रों को रगमंच पर संघर्ष के बीच लाने के पूर्व, उनके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से थोड़ी टीका-टिप्पणी अवश्य कर देते हैं, जिसमें पाठक मन में उस पात्र के व्यक्तित्व की साधारण कल्पना कर ले। अपनी इस प्रारम्भिक कल्पना के आधार पर ही वह, परिस्थितियों के बीच संघर्ष करते हुये

पात्रों के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत अनुमान कर सकता है। इसी में उसकी उत्सुकता बनी रहती है। अमरकांत की रूप-रेखा देखिए :—

"अमरकांत साँवले रंग का, छोटा सा, दुबला-पतला कुमार था। अवस्था बीस की हो गयी थी, पर अभी मसें भी न भीगी थीं। चौदह-पंद्रह साल का किशोर-सा लगता था। **उसके मुख पर एक वेदनामय दृढ़ता, जो निराशा से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी, अंकित हो रही थी मानो संसार में उसका कोई नहीं है।** इसके साथ ही उसकी मुद्रा पर कुछ **ऐसी प्रतिभा** कुछ ऐसी **मनस्विता** थी, कि **एक बार उसे देख कर फिर भूल जाना कठिन न था।**

मोटे अक्षर की पंक्तियाँ अमर के चरित्र की कुंजी हैं।

प्रोफेसर शांतिकुमार का रेखा चित्र देखिए :—

"शांतिकुमार की अवस्था कोई ३५ साल की थी। गोरे चिट्टे रूपवान आदमी थे। वेशभूषा अँग्रेजी थी, और पहली नजर में अँग्रेज हीमालूम पड़ते थे, क्योंकि उनकी आँखें नीली थीं और बाल भी भूरे थे। आक्सफोर्ड से डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर लाये थे। विवाह के **कट्टर विरोधी,** स्वतंत्रता-प्रेम के कट्टर भक्त, बहुत ही प्रसन्न-मुख, सहृदय, सेवा शील व्यक्ति थे। मजाक का कोई अवसर पाकर चूकते न थे, छात्रों से मित्रभाव रखते थे। राजनीतिक आन्दोलनों में खूब भाग लेते थे, पर गुप्त रूप से। खुले मैदान में न आते थे, हाँ सामाजिक क्षेत्र में खूब गरजते थे।"

शांतिकुमार अपने विचारों और कार्यों द्वारा अपने इसी स्वभाव का परिचय देते हैं।

प्रेमचंद जी ने विश्लेषणात्मक प्रणाली द्वारा समय-समय पर पात्रों के विषय में प्रत्यक्ष रूप से स्वयं पाठकों के सामने आकर कुछ न कुछ कहा है। उपन्यासकार के इस अधिकार का उन्होंने खुलकर प्रयोग किया है। कथोपकथनों और संघर्षों के बीच पात्रों के जिस पहलू को पाठक नहीं समझ पाता, वहीं पर प्रेमचंद जी स्वयं उस सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी करने लगते हैं। मुन्नी पर दो गोरों ने बलात्कार किया था।

स्त्री के लिए ऐसी घटना क्या हो सकती है, पाठक उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। प्रेमचंद जी ने विश्लेषण करके बता दिया है :—

'उसी वक्त एक युवती खेत से निकली और मुंह छिपाये, लँगड़ाती, कपड़े सँभालती, एक तरफ चल दी। अबला लज्जावश, किसी से कुछ कहे बिना सबकी नजरों से दूर निकल जाना चाहती थी। उसकी जिस अमूल्य वस्तु का अपहरण किया गया था, उसे कौन दिला सकता था? दुष्टों को मार डालो, इससे तुम्हारी न्याय-बुद्धि को संतोष होगा, उसकी तो जो चीज थी, गई। वह अपना दुख क्यों रोये, क्यों फरयाद करे, सारे संसार की सहानुभूति, उसके किस काम की?'

इस प्रकार की विश्लेषणात्मक प्रणाली द्वारा पात्रों के चरित्र पर अधिक से अधिक प्रकाश डालने में प्रेमचंद जी को सफलता मिली है। उनका यह शील-गुण-निरूपण सरस है और परिस्थितियों के अनुकूल है। जहाँ जरूरत है, वहीं पर केवल प्रेमचंद जी थोड़ा सा कह देते हैं।

प्रश्न—कथोपकथनों और स्वगत-कथनों द्वारा चरित्र-चित्रण की कला का विश्लेषण 'कर्म भूमि' के आधार पर कीजिए।

उत्तर—पाठक को पात्रों के सम्बन्ध में बहुत कुछ दूसरे पात्रों के कथोपकथनों से भी मालूम हो जाता है। कथोपकथनों द्वारा पात्रों के चरित्र का मूल्याङ्कन कठिन होता है क्योंकि एक पात्र जब किसी दूसरे पात्र के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करता है, तो स्वयं उसके विचारों की छाप उस मत पर होती है। एक पात्र, दूसरे पात्र की नजर में क्या है, यह तो हम जान सकते हैं परन्तु वही ठीक है, इसे मान लेना अनुचित होगा। उदाहरण के लिये अमर के सम्बन्ध में हम, सकीना और सुखदा दोनों के कथोपकथन से बहुत-कुछ जान सकते हैं परन्तु कहीं-कहीं पर दोनों मत-विरोधी हैं। सकीना की नजरों में अमर देवता है परन्तु सुखदा उसे एक पतित मनुष्य समझती है। ऐसी स्थिति में पाठक को बहुत-कुछ अपनी बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है। चरित्र-

चित्रण में आई हुई इस जटिलता को पाठक स्वयं समझने का प्रयत्न करता है। साथ ही यह मानना पड़ेगा कि कथोपकथनों द्वारा चरित्र-चित्रण में प्रेमचंद जी को सफलता अवश्य मिली है। पात्रों के स्वभाव का बड़ा सुलझा हुआ विश्लेषण मिलता है। सकीना ने अमर के मानसिक कष्टों का कितना सच्चा चित्र उपस्थित किया है :—

"बहन, मैं इस वक्त आप से साफ-साफ बातें कर रही हूँ। मुआफ कीजिएगा।...जैसे फाका करने के बाद अमीर आदमी भी जरदा पुलाव भूल कर सत्तू पर टूट पड़ता है, उसी तरह उनका दिल आप की तरफ से मायूस होकर मेरी तरफ लपका। वह मुहब्बत के भूखे थे मुहब्बत के लिये उनकी रूह तड़पती रहती थी। शायद वह नेमत उन्हें कभी मयस्सर भी न हुई। वह नुमायश से खुश होने वाले आदमी नहीं हैं। वह दिल और जान से किसी के हो जाना चाहते हैं और उसे भी दिल और जान से अपना कर लेना चाहते हैं...मैं उनके साथ चली क्यों न गई। बेचारे सत्तू पर गिरे, तो वह भी सामने से खींच लिया गया है।"

सकीना ने अमर के स्वभाव को बिल्कुल ठीक समझा है। कथन में जरा भी अत्युक्ति नहीं—अमर के हृदय की अतृप्त प्रेम-पिपासा का मार्मिक वर्णन और हो ही क्या सकता है ?

कथोपकथनों द्वारा मनुष्य अपने स्वभाव का विश्लेषण स्वयं कर बैठता है। सकीना को अमर पर कितना दृढ़ विश्वास है और वह क्यों अमर पर जान देती है, इसका कारण वह स्वयं बताती है—

"सभी ने मुझे दिल-बहलाव की चीज समझा और मेरी गरीबी से अपना मतलब चाहा। अगर किसी ने मुझे इज्जत की निगाह से देखा तो वह बाबू जी थे। अम्मा बड़ी पासा हैं, मुझे देवी समझती होंगी, किसी जवान को दरवाजे पर खड़ा नहीं होने देतीं, लेकिन इस वक्त आ पड़ी तो कहना पड़ता है कि मुझे मरदों को देखने और परखने के काफी मौके मिले हैं। सभी ने मुझे दिल-बहलाव की चीज

समझा और गरीबी से अपना मतलब निकालना चाहा ।"
(पृष्ठ २०२-२०३) ।

स्वगत कथनों और आत्मपरीक्षा द्वारा मनुष्य के चरित्र का बहुत कुछ पता चल जाता है । अमरकांत, जेल में काले खाँ के मरने के बाद एक बार जब अपने गत जीवन के सम्बन्ध में सोचता है, तो उसे पश्चात्ताप होता है । अपने व्यक्तित्व के जर्जर हड्डी के ढाँचे को वह आत्मपरीक्षण के प्रकाश में स्पष्ट देख लेता है और तभी उसे अपने से घृणा होने लगती है । प्रेमचंद जी ने चरित्र की इस प्रणाली का बड़े कलात्मक ढंग से प्रयोग किया है । देखिये :—

"उसमें स्थिरता न थी, संयम न था, इच्छा न थी । उसकी सेवा में दंभ था, प्रमाद था, द्वेष था । उसने दंभ में सुखदा की उपेक्षा की ....प्रत्यक्ष ने उसकी भीतर वाली आँखों में परदा डाल रक्खा था । इसी प्रमाद में उसने सकीना से प्रेम का स्वाँग किया.........उसने उस सरला रमणी की हीनावस्था से अपनी लिप्सा शांत करनी चाही थी । फिर मुन्नी उसके जीवन में आई.........उस देवी से उसने कितना कपट व्यवहार किया । यह सत्य है कि उसके व्यवहार में कामुकता न थी ।......अब आत्मपरीक्षण करने पर उसे ज्ञात हो रहा था कि उस विनोद में भी, उस अनुराग में भी कामुकता का समावेश था । ...उसके मन में प्रबल इच्छा हुई कि दोनों रमणियों के चरणों पर सिर रखकर रोये और कहा—देवियो, मैंने तुम्हारे साथ छल किया और तुम्हें दगा दी है । मैं नीच हूँ, अधम हूँ, मुझे जो सजा चाहे दो, यह मस्तक तुम्हारे चरणों पर है ।" पृष्ठ ३७९-८०

अभिनयात्मक प्रणाली—प्रेमचंद जी के पात्रों के सम्बन्ध में आप बहुत कुछ स्वयं उसके विश्लेषणों और पात्रों के कथपकथनों से जान लेते हैं । पात्रों के उस स्वभाव का परिचय हमें उनके कार्यों से भी मिलता है । पात्रों का स्वभाव निर्दिष्ट कर देने के बाद प्रेमचंद जी उन्हें

परिस्थितियों के बीच संघर्ष करते हुये दिखाते हैं। उस समय उनके कार्य-कलापों द्वारा भी, हमें उनके उसी स्वभाव का परिचय मिलता है। अमरकांत आदर्शवादी हैं परन्तु वय के अनुसार और नवयुवक जीवन की अनुभव-शून्यता के अनुकूल, उसमें चंचलता और स्थिरता है। उसके इस स्वभाव का परिचय सर्वत्र मिलता है। स्वतंत्रता आन्दोलन का वह पक्षपाती है परन्तु पुत्र के उत्पन्न होते ही, उसको कुछ उदासीनता होने लगती है। उसके विचारों में अस्थिरता है, अत: वह सुखदा के सम्बन्ध में बार-बार अपनी राय कायम करता है और उसे बिगाड़ भी देता है। प्रोफेसर शांतिकुमार को वह नौकरी न छोड़ने पर धिक्कारता है परन्तु ज्योंही सकीना शांतिकुमार के विचारों की प्रशंसा करने लगती है, वह अपनी राय बदल देता है। गाँव में लगान की माफी के सम्बन्ध में वह शांतिपूर्ण उपायों का समर्थन करता है परन्तु ज्योंही सभा में, उसे सुखदा की गिरफ्तारी का समाचार मिलता है, वह ऐसा भाषण दे बैठता है कि वह स्वयं भी गिरफ्तार कर लिया जाता है सलीम कवि-प्रकृति का मस्त तथा यथार्थवादी युवक है। हम उसे जगह-जगह शायरी करते हुये पाते हैं। अपनी सफलता के लिये वह हर उपाय का अवलम्बन कर लेता है। आई० सी० एस० की परीक्षा में वह ऐसे हथकंडे दिखाता है कि उसका नाम लिस्ट में आ जाता है। अमर और सलीम के तर्क-वितर्कों में हम उसकी यथार्थवादिता की प्रधानता स्पष्ट रूप से देखते हैं।

पात्रों को संघर्ष के बीच अपने चरित्र का परिचय देने का प्रेमचंद जी ने पूरा अवसर दिया है। पाठक स्वयं उस पर अपना मतामत प्रकट कर सकता है।

चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता—मनुष्यत्व, देवत्व और पशुत्व के बीच की कड़ी है। मनुष्य में दुर्बलताओं और देवतुल्य विशेषताओं का सम्मिश्रण होता है। प्रेमचंद जी के पात्रों में 'मनुष्यता' के दर्शन होते हैं, इसलिये उन्हें हम इसी दुनिया के जीव मानते हैं। उनके सारे कार्य

हमारे अनुभव और कल्पना से परे नहीं होते हैं। सच तो यों है कि उनके सारे के सारे पात्रों में हम अपनी दुर्बलताओं और आदर्शों का दर्शन करते हैं। उदाहरण के लिये 'कर्मभूमि' के समरकांत में हम एक भारतीय पिता और सद्गृहस्थ का रूप देखते हैं। यहाँ पर पुत्र और पिता में प्राय: एक प्रकार की दूरी रहती है, वह हमें समर और अमर के सम्बंधों में दिखाई देती है। पिता-पुत्र दोनों एक-दूसरे से असंतुष्ट रहते हैं। पत्नी की मृत्यु के बाद विधुर जीवन बिताते हुये जैसे एक भारतीय वयोवृद्ध पुरुष प्राय: जिस प्रकार अपने व्यवसाय में संलग्न होकर जैसे अपनापन खोकर दिन-रात जुटा रहता है, वही चीज समरकांत में दिखाई देती है। आपको समरकांत की तरह के वयोवृद्ध और गंभीर पुरुष भद्र परिवारों में देखने को मिल सकते हैं। उनमें स्नेह के सिवा कुछ नहीं। अमर से और उनसे नहीं बनती परन्तु पुत्र के कल्याण की बात वे कभी नहीं भूलते। वे अनुभव-प्राप्त और व्यावहारिक व्यक्ति हैं। इसलिए जब उन्हें सकीना के साथ अमर के प्रेम के सम्बन्ध का हाल मालूम होता है, तो वे अमर से कहते हैं—"बुढ़िया रोती हुई आई थी। मैंने बुरी तरह फटकारा। मैंने कह दिया कि मुझे तेरी बात का विश्वास नहीं। जिसकी स्त्री लक्ष्मी का रूप हो, वह क्यों चुड़ैलों के पीछे प्राण देता फिरेगा; लेकिन अगर कोई बात ही है उसमें घबराने की कोई बात नहीं है बेटा! भूल-चूक सभी से होती है। बुढ़िया को दो चार सौ रुपये दे दिये जायँगे।......मेरी परवाह मत करो, लेकिन तुम्हें ईश्वर ने बाल-बच्चे दिये हैं। सोचो, तुम्हारे चले जाने से कितने प्राणी अनाथ हो जायँगे......जो कुछ हो गया, सो हो गया आगे के लिये एहतियात रक्खो।

समरकांत जिस गुरुत्व और अनुभव प्रदर्शन के साथ परिस्थिति को सँभालने की चेष्टा करते हैं, वह बड़ी स्वाभाविक जान पड़ती है। इसी तरह उनका शिशु-प्रेम, मर्यादा का मोह और इन सबका अमर के प्रति पुत्र-स्नेह की पवित्र धारा में बह जाना उससे कहीं अधिक

स्वाभाविक है। जिस धन के लिये वे बुरा से बुरा काम करने से न चूकते थे, वही धन और वही आदर्श अंत में उन्होंने छोड़ दिया और अमर के मार्ग के पथिक बन गये।

पुत्र के प्रति उनकी कठोरता केवल दिखलाने की है। मन ही मन में वे अमर से बड़ा स्नेह करते थे। अमर से असंतुष्ट रहने का केवल कारण यह था कि वह उनकी इच्छानुसार नहीं चलता था। दूसरी ओर जब कोई अमर को बुरा कहता है, तो वे बिगड़ उठते हैं। जेल में जब सुखदा अमर की बात पूछती है, तो उनकी मुद्रा कठोर हो जाती है और वे अमर को भला-बुरा कहने लगते हैं परन्तु ज्योंही सुखदा अपने पति के महत्व का वर्णन करने लगती है, समर के हृदय में स्नेह का ज्वार आ जाता है। एक साँस में वे कह जाते हैं—'इसकी तो मैंने खूब जाँच की है, बात कुछ नहीं थी। उसे क्रोध था, उसी क्रोध में जो कुछ मुँह में आया बक गया। यह ऐब उसमें कभी न था, लेकिन उस वक्त मैं भी अंधा हो रहा था।' आदि पृष्ठ ३३९)

चरित्र-चित्रण में यह स्वाभाविकता इसीलिये आ गई है कि उनके पात्रों को हम अच्छाई और बुराई में लिपटा हुआ देखते हैं। अमर आदर्शवादी, त्यागी और कष्ट-सहिष्णु है पर उसमें असंयम भी है। प्रोफेसर शांतिकुमार, पक्के सुधारवादी हैं परन्तु वे खुलकर मैदान में नहीं आ पाते। सलीम जीवन को 'भोग का अवसर' समझता है परन्तु अहिंसात्मक आन्दोलन और सकीना का आदर्श प्रेम उसमें बड़ा परिवर्तन पैदा कर देते हैं और वह स्वयं नौकरी छोड़ देता है।

प्रेमचंद जी के चरित्र-चित्रण में इसलिये जान आ गई है कि उन्हें मनुष्य के मन का पूरा ज्ञान है। मनुष्य का मन विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार बदल जाता है, वय और जाति के अनुसार मनुष्य में किस प्रकार दुर्गुण और गुण पैदा होते हैं—जैसे बचपन में शरारत, यौवन में उद्दंडता और कामुकता, वृद्धावस्था में गंभीरता, पढ़े-लिखों में तर्क की आदत, स्त्रियों में प्रेम आदि – इन सबका उन्हें बहुत अच्छा

ज्ञान है । समरकांत में स्थिरता, अमर में अस्थिरता, सलीम में सुख-प्रेम, सुखदा में विलासिता और त्याग, मुन्नी में संयम और सकीना में भावों का वेग, इन सब में परिस्थिति, वय और समय का प्रभाव दिखाया गया है । गाँव वाले विशेषकरके दलित वर्ग के लोग किस प्रकार एक पढ़े-लिखे आदमी को श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगते हैं, तथा उसे त्राता समझने लगते हैं, यह आपको कर्मभूमि में देखने को मिलेगा । मानव वभाव के ज्ञान ने प्रेमचंद जी के चरित्र-चित्रण को बहुत ऊँचा उठा दिया है ।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—प्रेमचंद जी ने अपने पात्रों का चरित्र चित्रण बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है । उन्हें आधुनिक खोजों के आधार पर मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रमाणित किया है । 'अमर'का चरित्र चित्रण इसी दृष्टिकोण से किया गया है । १९वीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्राइड (Freud) नाम के एक यूरोपीय विद्वान ने मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें बताईं, जिन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है । उसने बताया कि प्रवृत्तियों के दमन करने से मनुष्य के मानसिक जीवन पर बड़ा सांघातिक परिणाम होता है । उसने प्रवृत्तियों में 'वासना प्रवृत्ति' को बहुत महत्वपूर्ण बताया है । वह इसे Libido अर्थात् जीवी शक्ति के नाम से पुकारता है । उसका कथन है कि यह वासना मूल रूप से बालकों में भी पाई जाती है । प्रेम इसी वासना का उज्ज्वल रूप है । बच्चे माता-पिता का चुम्बन, आलिंगन, क्रोड़ में रहने आदि के द्वारा इस काम प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करते हैं । यदि बचपन में उन्हें इनकी सन्तुष्टि नहीं प्राप्त होती, तो व्यक्तित्व में एक प्रकार का एकांगीपन पैदा हो जाता है और उनका विकास अनियमित ढंग से होने लगता है । फ्राइड की इन खोजों का और असन्तुष्ट काम प्रवृत्ति के परिणामों की छाया हम अमर के चरित्र में देखते हैं । अमरकांत के मन में चंचलता है, वह वासना को जीत न सका, यही उसके चरित्र का बीज है । उसका हृदय सदैव ही प्रेम का प्यासा रहा है । उसे माँ-बाप का प्यार नहीं मिला-पत्नी

से भी उसे यह अमूल्य वस्तु न प्राप्त हो सकी। इसी प्यास की आँधी में वह बह गया। वह सकीना पर आसक्त हो गया और उसे ले भागने को तैय्यार हो गया। मुन्नी से भाग चलने का प्रस्ताव किया। सकीना ने उसके स्वभाव का ठीक ही विश्लेषण किया है—"जैसे फ़ाका करने के बाद अमीर आदमी भी जरदा पुलाव भूल कर सत्तू पर टूट पड़ता है, उसी तरह उनका दिल मायूस होकर मेरी तरफ लपका। वह मुहब्बत के भूखे थे। मुहब्वत के लिये उनकी रूह तड़फती रहती थी। शायद यह नेमत उन्हें कभी मुअस्सर न हुई।"

असंतुष्ट प्रेम जीवन में हलचल मचा देता है। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि प्रेम के क्षेत्र में पराजित और प्रेम से अतृप्त व्यक्ति ही क्रांति के पुजारी बन जाते हैं। वास्तव में क्रांति द्वारा वे मानव-समाज से, जो उसकी इच्छाओं की पूर्ति में बाधक है, बदला लेना चाहते हैं। ठीक यही दशा अमर की भी है। जब वह सकीना को खुले आम पाने में असमर्थ हो जाता है, तो वह क्रांति का उपासक बन बैठता है। समाज और धर्म के विरुद्ध विद्रोह करने का अभिलाषा के मूल में उसका असंतोष काम कर रहा है। उसके लिये "धर्म बन्धन" उससे कहीं कठोर, कहीं असह्य, कहीं निरर्थक था। धर्म का काम संसार में मेल और एकता पैदा करना होना चाहिये। यहाँ धर्म ने विभिन्नता और द्वेष पैदा कर दिया है। 'क्यों खान-पान में रस्म रिवाज में धर्म अपनी टाँग अड़ाता है।·····अच्छा धर्म है!' हम धर्म के बाहर किसी से आत्मा का सम्बन्ध भी नहीं रख सकते। आत्मा को भी धर्म ने बाँध रक्खा है, प्रेम को भी जकड़ रक्खा है। यह धर्म नहीं कलंक है।

× × × ×

"वह अब क्रांति में ही देश का उद्धार समझता था—ऐसी क्रांति में, जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का, झूठे सिद्धान्तों का, परिपाटियों का अंत कर दे, जो एक नये युग की प्रवर्तक हो, एक नयी सृष्टि खड़ी कर दे, जो मिट्टी के असंख्य देवताओं को तोड़ फोड़कर

चकनाचूर कर दे। जो मनुष्य को धन और धर्म के आधार पर टिक वाले राज्य के पंजे से मुक्त कर दे। (पृष्ठ ६६) अमर के मन में इस क्रां की विचारधारा को जन्म देने वाला, यह असंतुष्ट प्रेम ही था। प्रेमचंद ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का बड़ा सुंदर विश्लेषण किया है।

मनुष्य में कमजोरियाँ होती हैं। वह उन्हें समझता है, वह जानता है कि मैं यह काम अनुचित कर रहा हूँ परन्तु यदि कोई उस कहने लगे कि यह काम बुरा है, तो वह पूरी शक्ति के साथ तर्क करत है और अपने कर्म को उचित बताता है। इसलिये उसके हृदय सच्ची बात उसके मुँह से कभी नहीं जानी जा सकती। अमर सकीना ओर आकृष्ट हुआ। यह उसकी कमजोरी है। जब सलीम उसे धिक्कार है और कहता है कि इससे न तुम्हारा भला होगा और न सकीना तो अमर अपनी कमजोरी को दार्शनिकता का रंग देकर प्रकट करत है—"मैं कोई कुर्बानी नहीं कर रहा हूँ और न किसी की जिन्दगी खाक में मिला रहा हूँ। मैं सिर्फ उस रास्ते पर जा रहा हूँ, जिस मेरी आतमा मुझे ले जा रही है। मैं किसी रास्ते या दौलत को अप आत्मा के गले की जंजीर नहीं बना सकता—मैं उन आदमियों में न जो जिंदगी को जिंदगी समझते हैं। मैं जिंदगी की आरजुओं जिंदगी समझता हूँ। मुझे जिंदा रखने के लिये एक ऐसे दिल जरूरत है, जिसमें आरजूयें हों, दर्द हो, त्याग हो, सौदा हो, जो साथ रो सकता हो, मेरे साथ जल सकता हो।...इस चंद-सालों में मे कितना रूहानी ज़वाल हुआ है, इसे मैं ही समझता हूँ। सकीना मुझे आज़ाद कर सकती है, उसी के साथ में रूहानी बलंदियों पर सकता हूँ आदि (पृष्ठ १००)।"

चरित्र-चित्रण में अन्तर्द्वन्द्व—मनुष्य को केवल वाह्य परिस्थिति से ही संघर्ष नहीं करना पड़ता, वरन् उसके हृदय में लड़ती हुई विरोधी भावनाओं और विचारों का सामना भी करना पड़ता संघर्षनीय मानसिक शक्तियों के चित्र खींचना एक ऊँची कला

प्रेमचंद जी इस कला में भी बड़े पटु हैं। प्रेमचंद जी के पात्रों के चरित्र में इस प्रकार के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के चित्र देखने को मिलते हैं। अमर सकीना से प्रेम करता है। उसकी गरीबी देखकर उसका हृदय तड़प उठता है। उसके पास पहनने के कपड़े नहीं थे, तभी तो वह चिराग बुझाकर कपड़े साफ कर रही थी। बस, वह सकीना के लिये, सुखदा की साड़ियाँ लाने के लिये चल पड़ा। एक ओर सकीना के प्रति प्रेम और दूसरी ओर सुखदा का भय—उसकी मानसिक स्थिति का कितना स्वाभाविक चित्र प्रेमचंद जी ने खींचा है :—

'वह वहाँ से उसी वेग के साथ घर पहुँचा। सुखदा के पास पचासों साड़ियाँ हैं। कई मामूली भी हैं। क्या वह उनमें से साड़ियाँ न दे देगी ? मगर वह पूछेगी—क्या करोगे, तो क्या जवाब देगा ? साफ-साफ कहने से तो वह शायद संदेह करने लगे। नहीं, इस वक्त सफाई देने का अवसर न था। सकीना गीले कपड़े पहने उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। सुखदा नीचे थी। वह चुपके से ऊपर चला गया, गठरी खोली और उसमें से चार साड़ियाँ निकाल कर दबे पाँव चल दिया।

× × × ×

कुछ दूर जाने पर सोचा—कल कहीं सुखदा ने अपनी गठरी खोली और साड़ियाँ न मिलीं, तो बड़ी मुश्किल पड़ेगी। नौकरों के सिर जायगी। क्या वह उस वक्त यह कहने का साहस रखता था, कि वे साड़ियाँ मैंने एक गरीब औरत को दे दी हैं ? नहीं, वह यह नहीं कह सकता। तो क्या साड़ियाँ ले जाकर रख दे ? मगर वहाँ सकीना गीले कपड़े पहने बैठी होगी। इस ख्याल ने उसे उन्मत्त कर दिया। वह जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ सकीना के घर जा पहुँचा।''

ये अन्तर्द्वन्द्व पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। पात्र के आदर्श-प्रेम और प्रवृत्ति में संघर्ष होने पर किस प्रकार पात्र उसका सामना करता है, यह पाठक स्वयं देख सकता है। प्रत्येक मनुष्य इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों से परेशान रहता है। इसलिये प्रेमचन्द जी के अन्तर्द्वन्द्व उनकी चरित्र-चित्रण कला की जान है।

प्रश्न—'प्रेमचंद जी अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण कला में सिद्धहस्त हैं' कर्मभूमि के आधार पर प्रमुख पात्रों का चित्रण करते हुए इसे सिद्ध कीजिए।

उत्तर—उपन्यास एक संसार होता है और पात्र उस लोक के प्राणी। जिस प्रकार संसार में रुचि वैचित्र्य और स्वभाव वैचित्र्य देखने को मिलता है, उसी प्रकार उपन्यासों के पात्रों में ये बातें देखने को मिलती हैं। प्रेमचंद जी संसार के प्रायः सभी पहलुओं से परिचित थे। उनके पात्रों की विभिन्नता, इस बात का प्रमाण है। कर्मभूमि में हमें अनेक प्रकार के जीव देखने को मिलते हैं। सलीम, अमर और प्रोफेसर शांतिकुमार में हम उन शिक्षाप्राप्त नवयुवकों का चित्र देखते हैं जो प्रगतिवादी हैं—स्वदेश का जिनमें अभिमान है, आदर्श जिनका पथ-प्रदर्शक है परन्तु उनमें भी कुछ कमजोरियाँ हैं। सुखदा जाग्रत भारतीय नारी समाज की प्रतिनिधि है, जो पुरुष के कंधे-से-कंधा भिड़ाकर राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में संघर्ष कर सकती हैं; जिसे अपने नारीत्व पर गर्व है और स्त्री और पुरुष के समानाधिकार की जो पक्षपातिनी है। नैना और सकीना भारतीय नारी के रूप हैं, जिनमें प्रेम और त्याग प्रधान हैं। वे प्राचीन राजपूत रमणियों की तरह समय पड़ने पर प्राणोत्सर्ग कर सकती हैं परन्तु भारतीय प्रेमादर्श को नहीं छोड़ सकतीं। लाला अमरकांत जैसे वयोवृद्ध घर-घर में पाये जाते हैं विशेषकर धनी परिवारों में। उनमें थोड़ी अनुदारता होती है, ज्ञान सीमित होता है अनुभव व्यापक। अपनी संतानों से वे असंतुष्ट रहते हैं परन्तु समय पड़ने पर अपत्य प्रेम उन्हें वही करने को बाध्य करता है, जिसे वे कभी करना नहीं चाहते। मिस्टर गजनवी में अफसरी बू है। वे रोब जमाना चाहते हैं परन्तु समय को पहचानते हैं नौकरी जाने के भय से ही वे कर्तव्य पालन में तत्पर हैं परन्तु वे जानते हैं कि भारत का भविष्य कुछ दूसरा ही है। गूदड़ चौधरी

ग्रामीण वृद्धों की प्रतिच्छाया हैं—हृदय के सरल और स्वभाव के निष्कपट। स्नेहवश अपनी सारी बुराइयों का वे त्याग कर सकते हैं। काशी और प्रयाग इत्यादि ग्रामीण युवक ठीक वैसे ही हैं, जो हर गाँव में पाये जाते हैं। काले खाँ जैसे बदमाशों की कमी नहीं।

कहाँ तक कहा जाय, हर प्रकार के मनुष्य प्रेमचंद जी की दुनिया में देखने को मिलते हैं।

अब हम प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण करेंगे।

अमर कांत

बचपन की घटनायें मनुष्य के जीवन पर अमिट प्रभाव डालती हैं। इस सत्य का अवलोकन हम अमर के जीवन में कर सकते हैं। जिस परिस्थिति में बालक पैदा होता है और बढ़ता है, उसी के अनुसार उसके स्वभाव का निर्माण होता है। अमरकांत के बाल्यकाल की और उसकी पारिवारिक परिस्थितियों का विवरण यों है :—

''अमर कांत के पिता लाला समरकांत बड़े **उद्योगी पुरुष** थे। उनके पिता केवल एक झोपड़ी छोड़ कर मरे थे, मगर समरकांत ने **अपने बहुबल से लाखों की** सम्पत्ति जमा कर ली थी। ...ऐसा मेहनती आदमी भी कम न होगा। **घड़ी रात रहे** गंगा स्नान करने चले जाते और सूर्योदय के पहले विश्वनाथ जी के दर्शन करके दूकान पर पहुँच जाते ... और **आधी रात तक डटे रहते**। अमरकांत की माता का **उसके बचपन में** ही **देहांत हो गया था**। मित्रों के कहने से **दूसरा विवाह कर** लिया था। ...उसकी नई माता उसी जिद और शरारतों को **क्षमादृष्टि से नहीं देखती**...वह अपनी माँ का अकेला लाड़ला लड़का था, बड़ा **जिद्दी नटखट**।...नई माता जी बात-बात पर डाँटती थीं। यहाँ तक कि **माता से उसे द्वेष हो गया था**।...पिता से भी ढीठ हो गया। **पिता और पुत्र में स्नेह का बंधन न रहा। लाला जी जो काम करते बेटे को उससे अरुचि थी**।......हम तो यही कहेंगे कि अमर का **चरित्र का निर्माण पितृद्वेष के हाथों हुआ**।'' (पृष्ठ ९-१०)

मोटे अक्षरों की पंक्तियों पर ध्यान दीजिये। बालक के चारित्रिक विकास में परिवार का बहुत बड़ा हाथ होता है। मनुष्य जन्म से ही प्रेम की प्यास लेकर आता है। शैशवकाल में माता के आलिङ्गन, चुम्बन और स्नेह के द्वारा उसकी सन्तुष्टि होना अनिवार्य है अन्यथा बचपन में ही 'निराशा' उसके हृदय में घर कर लेती है। अमर की माँ मर गई। यह एक पहला धक्का उसके व्यक्तित्व विकास पर लगा। उसकी स्नेह-पिपासा अतृप्त रह गई। उसकी यह कमी, यदि पिता बुद्धिमान है, तो पूरी कर सकता है परन्तु अमर के सम्बन्ध में हम देखते हैं कि लाला समरकांत सुबह से शाम तक घोर व्यस्तता का जीवन बिताते हैं—अमर की ओर ध्यान नहीं देते। यह **उपेक्षित** ही रहा। **विमाता के आगमन ने** उस समस्या को और भी जटिल बना दिया। अतृप्ति और असंतोष से द्वेष पैदा होता है। अमर पिता से द्वेष करने लगा। पारिवारिक कलह आरम्भ हो गई। ऐसी परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप उसके व्यक्तित्व का रूप जैसा बना, देखिये :—

"अमरकांत की अवस्था १९ साल से कम न थी, पर **देह और बुद्धि** को देखते हुये, अभी किशोरावस्था में था। देह का दुर्बल, बुद्धि का मंद। **पौधे को कभी मुक्त प्रकाश न मिला, कैसे बढ़ता कैसे फलता।** बढ़ने और फैलने के दिन कुसंगति और असंयम में निकल गये। **दस साल पढ़ते हो गये** थे और अभी ज्यों-त्यों करके आठवें में पहुँचा था।"

(पृष्ठ ११)

विद्यार्थी जीवन पर भी विषम पारिवारिक परिस्थितियों का बुरा प्रभाव पड़ता है। उसकी मानसिक स्थिति ठीक न होने से वे ठीक से ज्ञानार्जन भी नहीं कर सकते। उनके हृदय में अन्तर्द्वन्द्व (Mental Conflict) चला करता है। भावावेश (Emotional Tension) के कारण उनकी एकाग्रता और धारणाशक्ति निर्बल पड़ जाती है, शिक्षा में उनका पिछड़ जाना आश्चर्य की बात नहीं। अमर में प्रतिभा

थी परन्तु दमन और संयम (Inhibition and Repression) से वह कुंठित हो गई। उसके व्यक्तित्व का दूसरा चित्र देखिये:—

"अमरकांत साँवले रंग का छोटा सा, दुबला-पतला कुमार था। अवस्था बीस की हो गई थी, पर अभी मसें न भीगी थीं। चौदह पंद्रह साल का किशोर-सा लगता था। उसके मुख पर एक वेदनामय जड़ता जो निराशा से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी, अंकित हो रही थी। मानो संसार में उसका कोई नहीं है। इसके साथ ही उसकी मुद्रा पर कुछ ऐसी, प्रतिभा कुछ ऐसी मनस्विता थी, कि एक बार उसे देखकर भूल जाना कठिन था।"

अमर बचपन में माता-पिता के प्रेम से वंचित रहा। जब वह बड़ा हुआ तो यह स्वाभाविक ही था कि वह प्रेम की आकांक्षा एक स्त्री से करता। मातृ-स्नेह के बाद मनुष्य अपनी पत्नी से प्रेम प्राप्त करना चाहता है। पत्नी द्वारा केवल काम-प्रवृत्ति ही नहीं संतुष्ट होती, वरन् मनुष्य अपने हृदय की कोमलतम भावनाओं को उस पर निछावर कर देना चाहता है। वह एक स्त्री में एक ऐसा जीवनसंगी देखना चाहता है, जिससे वह अपने हृदय के सारे रहस्य कह दे। मनुष्य कितना ही आदर्शवादी हो, शक्तिशाली हो पर भाव-जगत् में वह निर्बल होता है। उसे वहाँ सहारा देने वाला एक व्यक्ति, एक स्त्री चाहिये। स्त्री इसी कमी को पूरा करती है—काम-प्रवृत्ति की संतुष्टि तो स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की एक कड़ी मात्र है। मनुष्य स्त्री से क्या आशा करता है—

कहूँ तुमसे क्या मैं कि क्या चाहता हूँ।
ज़फ़ा हो चुकी अब वफा चाहता हूँ।
बहुत आश्ना हैं ज़माने में लेकिन,
कोई दोस्त दर्द आश्ना चाहता हूँ।

मनुष्य एक ऐसी सहचरी चाहता है, जो उसके सुख में हँस सके। और अमर को यही नहीं मिला। जीवन में यह दूसरा भीषण धक्का (Frustration) शायद सबसे बड़ा धक्का था। अमर इसे न

सह सका। उसकी पत्नी सुखदा सुन्दर थी—वह अपनी वासना की तृप्ति उसके साथ कर सकता था, परन्तु उसके मनोभावों को तृप्ति न मिल सकती थी। उसने सकीना से ठीक ही कहा—'वह घर मेरे लिये जेलखाने से बेहतर है। मेरी हसीन बीबी मुझे संगमरमर की मूरत सी लगती है, जिसमें दिल नहीं, दर्द नहीं। तुम्हें पाकर मैं सब कुछ पा जाऊँगा'' पति-पत्नी का सम्बन्ध होते हुये, भी उनमें सच्चा प्रेम न था—''...दोनों में कोई सामंजस्य न था। दोनों अपने-अपने मार्ग पर चले जाते थे। दोनों के विचार अलग, व्यवहार अलग, संसार अलग। जैसे दो भिन्न जलवायु के जन्तु एक पिंजरे में बन्द कर दिये गये हों।''

अमर के हृदय में अतृप्त प्रेम-पिपासाग्नि जल रही थी। सकीना ने पहली बार उसके हृदय को पढ़ा। अमर की प्रकृति का अच्छा विश्लेषण उसकी जबानी सुनिये :—

''बहन, मैं इस वक्त आप से साफ़-साफ़ बातें कर रही हूँ, माफ़ कीजियेगा। आपकी तरफ़ से इन्हें कुछ मलाल जरूर था और जैसे फाका करने के बाद अमीर आदमी भी जरदा पुलाव भूल कर सत्तू पर टूट पड़ता है, उसी तरह उनका दिल आपकी तरफ से मायूस होकर मेरी तरफ़ लपका। यह मुहब्बत के भूखे थे। मुहब्बत के लिए उनकी रूह तड़पती रहती थी। शायद यह नेमत उन्हें कभी **मुअस्सर** ही न हुई।''

अमर के सकीना की ओर आर्कषित होने का कारण स्वयं प्रेमचंद जी ने दे दिया है—''बचपन में ही वह माता के स्नेह से वंचित हो गया था। जीवन के पंद्रह साल उसने शुष्क शासन में काटे। **कभी माँ डाटती कभी बाप बिगड़ता।** केवल नैना की कोमलता उसके भग्न-हृदय पर फाहा रखती थी। सुखदा भी आई, तो **वही शासन और गरिमा** लेकर; **स्नेह का प्रसाद उसे यहाँ भी न मिला।** वह चिरकाल की स्नेह तृष्णा किसी प्यासे पक्षी की भाँति जो कई सरोवरों के सूखे तट से निराश लौटकर आया हो, स्नेह की **यह शीतल छाया** (सकीना) देखकर

विश्राम और तृप्ति के लोभ से उसकी शरण में आई। यहाँ शीतल छाया ही न थी, जल भी था। पक्षी यहीं रम जाय, तो कोई आश्चर्य है !" स्वयं अमर कहता है—मुझे जिंदा रखने के लिये एक ऐसे दिल की जरूरत है। जिसमें आरज़ूयें हों, दर्द हो, त्याग हो, सौदा हो, जो मेरे साथ रो सकता हो, मेरे साथ जल सकता हो।"

प्रेम आत्म-समर्पण चाहता है। अमर को सुखदा से यह आत्म-समर्पण न मिल सका—हाँ सकीना से मिला। बस वह मुग्ध होगया। उस का प्रेम सन्तुष्ट न हो सका, क्योंकि मिलन में अनेक बाधायें थीं। यही अतृप्ति उसे मुन्नी की ओर ढकेल देती है। जब मुन्नी उसके आगे आत्म-समर्पण कर देती है—'मैं तुमसे कुछ और नहीं चाहती। बस इतना चाहती हूँ कि तुम मुझे अपनी समझो…।', तो भावावेश में कह देता है—'आओ हम तुम कहीं चले चलें मुन्नी। वहाँ मैं कहूँगा यह मेरी……"

प्रेम-प्रवृत्ति का संतुष्ट होना आवश्यक है। यदि यह संतुष्टि नहीं मिलती, तो स्वभाव में एक प्रकार की अनस्थिरता आ जाती है। अत्यधिक संयम भी मनुष्य को असंयमी बनाकर आदर्श की छत से नीचे ढकेल देता है। अमर का यही हाल हुआ। इस प्रेम-पिपासा के कारण ही वह कभी सुखदा की ओर खिंचता है और कभी उससे दूर हटता दिखाई देता है। फिर वह सकीना की ओर बड़े वेग से बढ़ता है। कुछ दिन प्रवास में रहकर, वह मुन्नी के ऊपर मुग्ध हो जाता है। वियोग और सुखदा के विचार परिवर्तन ने उसे फिर सुखदा की ओर लौटने के लिये बाध्य किया। उसका मन मुन्नी की ओर से विरक्त हो जाता है। सकीना की ओर से भी उसका ध्यान हटने लगता है। वास्तव में यौवनकाल में, अनुभव की कमी और चित्त की चंचलता द्वारा युवक ऐसी स्थिति में पड़ ही जाते हैं। नवयुवक अमर में यह अस्थिरता और प्रेम-गाम्भीर्य नहीं है। कर्मभूमि, में प्रवेश करके और युद्ध करने के बाद उसे वास्तविकता ज्ञात होती है। वह समझ लेता है कि उसका प्रेम 'आदर्श प्रेम' नहीं। अन्त में मुन्नी के प्रति गहरी उदासीनता और

सकीना का ध्यान छोड़कर फिर सुखदा की ओर मुड़ना अमर के चरित्र में कुछ कमजोरी दिखाता है। अन्त में वह स्वयं आत्म-निरीक्षण द्वारा अपने चरित्र का वीभत्सरूप देखकर काँप उठता है—"उसमें स्थिरता न थी, संयम न था, इच्छा न थी। उसकी सेवा में दंभ था, प्रमाद था, द्वेष था। उसने दंभ में सुखदा की उपेक्षा की…प्रत्यक्ष ने उसकी भीतर वाली आँखों में परदा डाल रक्खा था। उसी प्रमाद में उसने सकीना से प्रेम का स्वाँग किया। क्या उस उन्माद में लेषमात्र भी प्रेम की भावना थी? आज उस प्रेम में लिप्सा के सिवा उसे और कुछ न दिखाई देता था। लिप्सा भी थी, नीचता भी थी। उसने उस सरला रमणी की हीनावस्था से अपनी लिप्सा शांत करनी चाही। फिर मुन्नी उसके जीवन में आयी निराशाओं से भग्न, कामनाओं से भरी हुई। उस देवी से उसने कितना कपट कब तक किया।……उस विनोद में भी, उस अनुराग में भी कामुकता का समावेश था।"

सकीना से प्रेम करते हुये अमर घर छोड़ने को तैयार हो जाता है। एक दिन घर छोड़ कर चला भी जाता है। गाँव में रहते हुये वह सकीना को एक क्षण भी नहीं भूलता। वह यही सोचता है कि एक दिन सकीना उसके साथ यहीं आकर रहेगी। सकीना के प्रेम-पात्रों को पढ़कर तड़प उठता है। अमर का यह अवैध प्रेम भी एक प्रेमादर्श बन जाता है परन्तु दूसरे क्षण ही उसे आदर्शच्युत होते देखकर पाठक को गहरा धक्का लगता है। गाँव में रहकर वह मुन्नी की ओर आकर्षित हो जाता है। उसे लेकर भाग चलने के लिये वह तैयार होता है परन्तु जब सुखदा के जेल जाने का समाचार उसे मिलता है, तभी वह मुन्नी से इस प्रकार उदासीन हो जाता है कि प्रेमादर्श की हत्या हो जाती है। यहाँ उसका रूप एक कामुक और वेश्यागामी व्यक्ति से भी गया-बीता दिखाई देता है।

अमर में बहुत से ऐसे गुण भी हैं, जो प्रायः सभी नवयुवकों में नहीं पाये जाते। वह एक आत्मसम्मान प्रिय नवयुवक है। उसे कितनी ही

आवश्यकता हो, वह अपने पिता से पैसा नहीं लेता, यहाँ तक कि फीस के लिये भी नहीं लेता। जब उसकी बहन नैना उसके लिये, पिता से फीस मांगती है और अमर को यह हाल बताती है, तो वह स्पष्ट कह देता है—तुमने उनसे नाहक माँगे, नैना। जब उन्होंने मुझे इतनी निर्दयता से दुत्कार दिया, मैं नहीं चाहता कि उनसे एक पैसा भी माँगूँ।" पिता ने उसके मनोभावों की ओर ध्यान नहीं दिया; इसलिये वह रुपये किसी प्रकार नहीं स्वीकार करता। उसकी पत्नी सुखदा ने एक बार उसके सामने प्रस्ताव रक्खा—"४०) के लिये इतना हंगामा। तुम्हें जितनी जरूरत हो मुझसे ले लो, मुझसे लेते तुम्हारे आत्मसम्मान को चोट लगती हो तो अम्मा से ले लो। वह अपने को धन्य समझेंगी। उन्हें इसका अरमान ही रह गया कि तुम उनसे कुछ माँगते। मैं तो कहती हूँ मुझे लेकर लखनऊ चले चलो और निश्चिंत होकर पढ़ो। अम्मा तुम्हें इंगलैंड भेज देंगी। वहाँ से अच्छी डिगरी ला सकते हो।" (पृ०१८) सुखदा की माँ के पास लाखों की सम्पत्ति थी। अमर को ही वह मिल सकती थी पर उसे लोभ न था। उसने अपने भविष्य की ओर कभी ध्यान न दिया। उसने फौरन सुखदा का प्रस्ताव ठुकरा दिया—"मुझे डिग्री इतनी प्यारी नहीं है कि उसके लिये ससुराल की रोटियाँ तोड़ूँ अगर मैं अपने परिश्रम से धनोपार्जन करके पढ़ सकूँगा, तो पढ़ूँगा, नहीं कोई धंधा देखूँगा आदि।" पृष्ठ—१९

आतमसम्मान और स्वावलम्ब उसके चरित्र के दो मुख्य गुण हैं। प्रांत में सर्वप्रथम आने पर भी, आयु अधिक होने के कारण उसे छात्र-वृत्ति न मिल सकी, उसे फिर भी निराशा न हुई। चरखा चलाकर और सूत बेच कर वह अपना खर्च चलाता था। आतमसम्मान ने उसे स्वावलम्बी बना दिया था। पिता के आगे उसने कभी भी हाथ नहीं फैलाया। पढ़ाई का खर्च पूरा करने के लिये उसने कई बड़ी-बड़ी व्यावसायिक फार्मों में पत्र-व्यवहार करने का काम ले लिया। जब सुखदा आपत्ति करती, तो वह खुलकर कह देता था—"काम करके उपार्जन

करना शर्म की बात नहीं। दूसरों का मुँह ताकना शर्म की बात है। × × × ×

"जब तक सामर्थ्य का ज्ञान न था, तब तक कष्ट होता था। जब मालूम हो गया, कि मैं अपने खर्च भर को कमा सकता हूँ, तो किसी के सामने हाथ क्यों फैलाऊँ ?" पृ०—८०

आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता दोनों गुणों के कारण अमर पिता के सामने कभी नहीं झुका। पिता अपने पुत्र को अपने विचारों और आदर्शों पर चलने वाला देखना पसंद करता है। समरकांत को धन से प्रेम था अमर को विराग। लाला उसका खर्च बंद करके, डाँट डपट करके उसे पराजित करना चाहते थे परन्तु वह अजेय रहा। अंत में यहाँ तक नौबत पहुँची कि अमर अपनी पत्नी, पुत्र, बहन के साथ अलग हो गया। अलग एक छोटे मकान में रहकर उसने अनेक कष्ट सहे। खादी बेच-बेच कर उसने संकट के दिन कांटे परन्तु पिता के आगे उसने हथियार नहीं डाले। पत्नी ने विरोध किया। लोगों ने उसका अपमान तक किया परन्तु वह अपने प्रण पर अटल रहा।

अमर सदैव कर्तव्य परायण, परिश्रमी और निर्लोभी रहा। जिस प्रकार उसने आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते हुये अपनी पढ़ाई जारी रक्खी। पिता से अलग होने पर उसके घोर परिश्रम करने का दृश्य देखने योग्य है:—

"अमरकांत खादी बेच रहा है। तीन बजे होंगे, लू चल रही है, बगूले उठ रहे हैं, दूकानदार दूकानों पर सो रहे हैं, रईस महलों में सो रहे हैं, मजूर पेड़ों के नीचे सो रहे हैं और अमर खादी का गट्ठा लादे पसीने में तर, चेहरा सुर्ख, आँखें लाल, गली-गली घूमता फिरता है।"

(पृ० १२६)

इस प्रकार का परिश्रम अमर करता है—निस्संकोच रूप से। वह परिश्रम करने में अपना गौरव समझता है। म्यूनीसिपल कमिश्नर होते हुये भी फेरी (Hawker) का काम करना साधारण बात नहीं। एक

वकील साहब जब उसे यह काम छोड़ने की सलाह देते हैं—तो वह साफ कह देता है "मजूरी करने से म्यूनीसिपल कमिश्नरी की शान में बट्टा नहीं लगता। बट्टा लगता है–धोखे-धड़ी की कमाई खाने से।" अमर ईमानदारी और सच्चाई को सर्वोपरि स्थान देता है। उसकी सास ने उसे एक हज़ार रुपये इसलिये भेजे कि उनके लिये वह एक घर का प्रबंध कर दे। अमर ने केवल ८००) में सारा काम बना दिया और बची हुई रकम से एक पैसा भी नहीं लिया। रेणुका देवी ने कुछ देना चाहा परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया—पृष्ठ २३। धन के संबंध में अमर के विचार बड़े ही दार्शनिकतापूर्ण हैं। जब उसके पिता ने उसे दूकान पर बैठने के लिये कहा और (पृ० १५) तो वह कहता है–"संसार धन के लिये प्राण दे, मुझे धन की इच्छा नहीं। एक मजदूर भी धर्म और आत्मा की रक्षा करते हुये जीवन का निर्वाह कर सकता है। कम-से-कम मैं अपने जीवन में इसकी परीक्षा करना चाहता हूँ।" धन के लिये वह अपनी आत्मा की हत्या करना नहीं पसंद करता था। पिता के व्यापार में उसे यही करना पड़ता था। उसकी दूकान पर चोरी का माल बिकता था। यह जानकर उसे घृणा हो गई। उसने काले खाँ से २००) की चीज ३०) में भी लेने से इन्कार कर दिया—पृ० ३७। इस बात को लेकर पिता-पुत्र में एक विवाद उठ खड़ा होता है। अमर फिर भी साफ कह देता है—मैं भूखों मर जाऊँगा, पर आत्मा का गला न घोटूँगा।

अमर एक आदर्शवादी नवयुवक है। साहित्य और दर्शन के अध्ययन ने उसमें आध्यात्मिकता का समावेश कर दिया था। संसार की कठोरता से वह अनभिज्ञ था। वह हृदय का सरल और निष्कपट था। अपनी दूकान पर एक असमर्थ और वृद्धा पठानिन को देखकर उसका हृदय दया से उमड़ पड़ता है। वह स्वयं उसे दूकान पर सहारा देकर चढ़ाता है। रुपये दे देने के बाद, वह इक्का करके पठानिन को उसके घर पहुँचा देता है। दयार्द्र हो जाना उसका स्वभाव है। पठानिन की

गरीबी और सकीना का हाल देखकर ही वह उनकी सहायता करने लगता है और बाद में प्रेम के चक्कर में फँस जाता है। अमर में बहुत से गुण हैं परन्तु कुछ ऐसी कमजोरियाँ भी उसमें हैं, जिनके कारण हमारी उस पर अधिक श्रद्धा नहीं रहती। उसका त्याग, कष्टसहन और परिश्रम हमें अच्छा लगता है परन्तु उसमें सहिष्णुता का अभाव है। वह बात-बात में पिता से लड़ पड़ता है, पत्नी से भी कभी-कभी असंतुष्ट होकर बिगड़ उठता है। पिता से अलग होने के बाद वह "बड़ा क्रोधी, बड़ा कटुभाषी, उद्दण्ड हो गया है। हरदम उसकी तलवार म्यान से बाहर रहती है। बात-बात पर वह उलझता है।' प्रेमचन्द जी के शब्दों में उसके चरित्र की खरी आलोचना सुनिये :—

"त्यागी दो प्रकार के होते हैं। एक वह, जो त्याग में आनन्द मनाते हैं, जिनकी आत्मा को त्याग में संतोष और पूर्णता का अनुभव होता है, जिनके त्याग में उदारता और सौजन्य है। दूसरे वह, जो दिलजले त्यागी होते हैं, जिनका त्याग अपनी परिस्थितियों से विद्रोह मात्र है, जो अपने न्याय-पथ पर चलने का तावान संसार से लेते हैं, जो खुद जलते हैं, इसलिये दूसरों को भी जलाते हैं। अमर इसी तरह का त्यागी था।" पृ० १२७

सेवा के साथ-साथ वह नाम भी चाहता है। कई अवसरों पर वह स्वामी आत्मानंद से ईर्ष्या भी करता है। इतना होते हुए भी देश के प्रति उसके मन में सच्चा प्रेम है। वह व्यावहारिक भी है। गाँवों में जाकर वह स्वयं हरिजनों के साथ बस जाता है। उसी के परिश्रम का फल था कि ग्रामीण जनता में जागृति उत्पन्न हो गई और आन्दोलन में ग्रामवासियों ने अपने संगठन का परिचय दिया। अमर के चरित्र में हम गाँधीवाद की पूरी छाप पाते हैं—रचनात्मक कार्यक्रम, अहिंसा, असहयोग और सेवा—गाँधी जी द्वारा निर्धारित सभी अस्त्रों का सफलता पूर्वक प्रयोग अमर ने किया। उसमें नेतृत्वशक्ति है और उसका व्यक्तित्व आकर्षक है। प्रोफेसर शांतिकुमार, सलीम, समरकांत और

सुखदा, अंत में सभी उसके बताये हुये मार्ग का अनुसरण करते हैं। इसका कारण यह है कि उसमें एक अपूर्व लगन और उत्साह है। इसी गुण ने अमर को सफलता दिलाई।

अमर के चरित्र में गुण और दोष दोनों हैं। यौवन-काल में चित्तकी चंचलता को अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। इस काल में हर एक को हवा लग ही जाती है। महाकवि बिहारी जी ने ठीक ही कहा है :—

इक भीजे चहले परे, बूड़े बहे हजार
कितै न अवगुन जग करै वय नय बढ़ती बार।

अमर के सारे अपराध इस दृष्टि से क्षम्य है। लाला समरकांत के शब्दों से हम सहमत हैं—"मैं तो सोचता हूँ जो लोग जाति-हित के लिये अपनी जान होम करने को हरदम तैयार रहते हैं, उनकी बुराइयों पर निगाह ही न डालनी चाहिये।'.(पृ०३४०) वास्तव में अमर से जो कुछ भूलें हुईं, उनके लिये उसकी परिस्थितियाँ अधिक जिम्मेदार हैं। सुखदा को अन्त में यह बात स्वीकार करनी पड़ी—"वास्तव में दोष इनका न था। सरासर मेरा अपराध था। उनका-सा तपस्वी पुरुष मुझ जैसी विलासिनी के साथ कैसे प्रसन्न रह सकता था। आपके घर में उनके लिए स्थान न था। आप उनसे बराबर खिंचे रहते थे।···वह अच्छा करें या बुरा, जो कुछ करते थे, उसका विरोध होता था। बात-बात पर उनका अपमान होता था। ऐसी दशा में कोई संतुष्ट न रह सकता था।······हमने उनकी विशाल तपस्वी आत्मा को भोग के बंधनों से बाँध कर रखना चाहा। आकाश में उड़ने वाले पक्षी को पिंजरे में बन्द करना चाहते थे। जब पक्षी पिंजरे को तोड़ कर उड़ गया, तो मैंने समझा मैं अभागिनी हूँ। आज मुझे मालूम हो रहा है, वह मेरा परम सौभाग्य था।" पृ० ३३८।

प्रश्न—'कर्मभूमि' में लाला समरकांत भारतीय सद्-गृहस्थ का सच्चा नमूना हैं। उनका चरित्र चित्रण करते हुए इस बात की पुष्टि कीजिए।

उत्तर—लाला समरकांत भारतीय सद्गृहस्थ का सच्चा नमूना हैं। भारतीय वयोवृद्ध जन, जिस प्रकार पुरातन काल से चली आती हुई हिंदू संस्कृति पर अगाध श्रद्धा रखते हैं और उस पर टीका-टिप्पणी न करके आँखें बन्द किये हुये उनका अनुसरण करते चले जाते हैं, उसी प्रकार हमारे लाला समरकांत भी जीवन-यापन करते हैं। गृहस्थी की गाड़ी को खींचते हुये—परिवार के पालन-पोषण की चिंता में निमग्न यह व्यावहारिक जीव इस वास्तविक संसार के युद्ध का कर्मठ सैनिक है। अपने मार्ग पर निश्चल और अबाध गति से चलते जाना उसके चरित्र की विशेषता है। उसके चरित्र में ऊपरी शुष्कता और कठोरता के भीतर वात्सल्य की जो निर्मल धारा बहती है, उसमें स्नान करके पाठक एक बार प्रसन्न हो उठता है। ऐसे समरकांत का रेखाचित्र देखिये :—

"लाला जी दोहरे बदन के दीर्घकाय मनुष्य थे। सिर से पाँव तक सेठ—वही खल्वाट मस्तक, वही फूले कपोल, वही निकलती हुई तोंद, मुख पर संयम का तेज, जिसमें स्वार्थ की गहरी झलक मिली हुई थी।" पृ० १५।

लाला समरकांत पूंजीवादी वर्ग के प्रतिनिधि हैं। पूँजी इकट्ठा करने में उन्हें कमाल हासिल है। उचित या अनुचित सभी उपायों का अवलम्बन करके धन इकट्ठा करने में उन्हें कोई संकोच नहीं। चोरी का माल जिसका मूल्य सैकड़ा हो, एक दहाई में खरीद लेना उन्हीं का काम है। कालेखाँ जैसे बदमाश उनकी आमदनी के जरिये हैं। उनकी सफलता का मुख्य कारण उनका परिश्रम है। उनकी जीवनचर्या का नमूना देखने योग्य है :—

"अमरकांत के पिता लाला समरकांत बड़े उद्योगी पुरुष थे। उनके पिता केवल एक झोपड़ी छोड़कर मरे थे, मगर समरकांत ने अपने बाहुबल से लाखों की सम्पत्ति जमा कर ली थी। पहले उनकी एक छोटी सी हल्दी की आढ़त थी। हल्दी से गुड़ और चावल की बारी आई। तीन बरस तक लगातार उनके व्यापार का क्षेत्र बढ़ता ही गया

अब आढ़तें बन्द कर दी थीं। केवल लेन-देन करते थे। जिसे कोई महाजन रुपये न दें, उसे वह बेखटके दे देते थे और वसूल भी कर लेते थे। ··· ऐसा मेहनती आदमी भी कम होगा। घड़ी रात रहे गंगा-स्नान करने चले जाते और सूर्योदय के पहले विश्वनाथ जी के दर्शन करके दूकान पर पहुँच जाते। वहाँ मुनीम को जरूरी काम समझा कर तगादे पर निकल जाते और तीसरे पहर लौटते। भोजन करके फिर दूकान पर आ जाते और आधी रात तक डटे रहते। थे भी भीमकाय। भोजन तो एक ही बार करते पर खूब डटकर। दो ढाई सौ मुग्दर के हाथ अभी तक फेरते थे।" पृ० ९–१०

उनका यह दैनिक कार्यक्रम इस बात का प्रमाण है कि उनके जीवन में सिवा धनार्जन के और दूसरा उद्देश्य नहीं। इसी बात को लेकर उन से और अमर से कभी नहीं पटती। वे व्यावहारिक जीव हैं। बिन धन के आज की दुनिया में एक क़दम भी चलना दुष्कर है, यह वह अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए वे अमर से साफ कहते हैं—"धन न रहेगा तो लाला भीख माँगोगे। यों चैन से बैठ कर चरखा न चलाओगे। ··· कौन है जिसे धन की जरूरत नहीं? साधु-सन्यासी तक तो पैसों पर प्राण देते हैं। पृ० १५।

समरकांत धनार्जन करना मनुष्य का मुख्य कर्तव्य समझते थे परन्तु यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि उनका उद्देश्य उन पूँजीपतियों का-सा नहीं जो दूसरों का शोषण करते हैं, और जो भूखी और नंगी जनता की आँखों में धूल डाल कर उनसे अपना उल्लू सीधा करते हैं। धन संग्रह करने में यदि उनकी रुचि है तो इसलिये कि वे अपने परिवार का पालन-पोषण करना चाहते हैं—उनका अपना कोई भी स्वार्थ नहीं। वे अमर से कहते हैं—"मैं बैल नहीं हूँ। तुम्हीं लोगों के लिये जंजाल में फँसा हूँ। अपने ऊपर लाद न ले जाऊँगा। तुम्हें कुछ तो मेरी मदद करनी चाहिये। बड़े नीतिवान् बनते हो, क्या यही नीति है कि बूढ़ा बाप मरे और जवान बेटा उसकी बात न पूछे।" पृ० १५

वास्तव में वह सारा परिश्रम अमर के लिये करते हैं, अपने लिये नहीं।

समरकांत पक्के यथार्थवादी हैं। आदर्श का पालन केवल इने-गिने लोग ही कर सकते हैं। प्रायः सभी लोगों को कुछ अंशों तक झूठ बोलना या धोखा देना पड़ता है। समरकांत इस सत्य को समझते हैं। उनके दीर्घ अनुभव ने उन्हें यही सिखाया है। अमर को इसीलिये वे बार-बार समझाते हैं—"बस तुम्हीं तो संसार में एक धर्म के ठेकेदार रह गये हो, और सब तो अधर्मी हैं। वही माल जो तुमने अपने घमंड में लौटा दिया, तुम्हारे किसी दूसरे भाई ने दो चार रुपये कम-वेश देकर ले लिया होगा। उसने तो कमाये, तुम नीबू-नोन चाट कर रह गये। डेढ़ सौ रुपये तब मिलते हैं, जब डेढ़ सौ थान कपड़ा या डेढ़ सौ बोरे चीनी बिक जाय। मुँह का कौर नहीं है।

× × ×

"तो फिर कौन रोजगार करोगे ? कौन रोजगार है जिसमें तुम्हारी आत्मा की हत्या न हो, लेन-देन, सूद-बट्टा, अनाज-कपड़ा, तेल, घी सभी रोजगारों में दाँव-घात है। जो दाँव-घात समझता है, वह नफा उड़ाता है, जो नहीं समझता, उनका दिवाला पिट जाता है। मुझे कोई ऐसा रोज़गार बता दो जिसमें झूठ न बोलना पड़े। इतने बड़े-बड़े हाकिम हैं, बताओ कौन घूस नहीं लेता ? एक सीधी-सी नकल लेने जाओ तो एक रुपया लग जाता है। ··· कौन वकील है, जो झूठे गवाह नहीं बनाता ? लीडरों में कौन है जो चंदे के रुपये में नोच-खसोट न करता हो ?" पृ० ४७

जीवन के सम्बन्ध में समरकात के अनुभव अकाट्य हैं। वही अनुभव उनके व्यक्तित्व का संचालन करते हैं। मनुष्य के स्वभाव और उसकी दुर्बलता से वे पूरी तरह परिचित हैं। व्यवहार-कुशलता में निपुण होने के कारण, वे बड़ी आसानी से हर एक काम बना लेते हैं।

उन्हें यह मालूम होता है कि अमर सकीना से प्रेम करने लगा है। अमर घर छोड़ना चाहता है। इस अवसर पर वे अपनी व्यावहारिक बुद्धि का बड़ा सुन्दर परिचय देते हैं। उनके कथन में कितनी वास्तविकता है—

"मैं सब कुछ सुन चुका हूँ लल्लू। बुढ़िया रोती हुई आई थी। मैंने बुरी तरह फटकारा। मैंने कह दिया, मुझे तेरी बात का विश्वास नहीं है...लेकिन अगर कोई बात ही है तो उसमें घबड़ाने की कोई बात नहीं है बेटा! भूल-चूक सभी से होती है, बुढ़िया को दो-चार सौ रुपये दे दिये जायेंगे। लड़की की किसी भले घर में शादी हो जायगी......जो कुछ हो गया सो हो गया। आगे के लिये एहतियात रक्खो आदि।" पृ० १४१

समरकांत के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है, उनका स्नेह। अमर के प्रति उनका प्रेम अगाध था। भारतीय घरों में पिता-पुत्र प्राय: एक दूसरे को नहीं समझ पाते। पिता सदैव यही चाहता है कि पुत्र उसी के मार्ग का अनुगमन करे। जब पुत्र ऐसा नहीं करता है तो पिता के मन में एक प्रतिक्रिया होती है, वह पुत्र का विरोध करने लगता है। इस विरोध में विद्वेष नहीं, सुधार की भावना निहित होती है। समरकांत के पुत्र के प्रति व्यवहार में यही भावना थी। अमर को वे अपने वश में न कर सके। इससे उन्हें एक निराशा और खीझ होती थी। उनके कथनों से उनका स्नेह ही झलकता है—

"तुम्हारा सब कुछ है। ऐसा नहीं समझते। तो यहाँ तुम्हारा कुछ नहीं है, जब मैं मर जाऊँ, तो जो कुछ हो आकर ले लेना।" पृ० ११४

"मजूरी करेंगे! एक घड़ा पानी तो अपने हाथों खींचा नहीं जाता, ...अपने भाग्य को सराहो, कि मैंने कमाकर रख दिया है। तुम्हारा किया कुछ न होगा। फिर देखें तुम्हारी आतमा किधर जाती है।" पृ०४७

एक बूढ़े समरकांत के हृदय में कितना स्नेह है परन्तु उदासीनता के आवरण में छिपा हुआ। जब अमर सकीना के लिए घर छोड़ कर भागने को तैयार होता है, उस समय वे जिस दुखी मन से अमर को समझाते हैं उससे उनकी ममता स्पष्ट प्रकट होती है —

"मेरी परवाह मत करो, लेकिन ईश्वर ने तुम्हें बाल-बच्चे दिये हैं। सोचो तुम्हारे चले जाने के बाद कितने प्राणी अनाथ हो जायँगे। स्त्री तो स्त्री ही है, बहन है, वह रो-रो कर मर जायगी। रेणुका देवी हैं, वह भी तुम्हीं लोगों के प्रेम से यहाँ पड़ी हुई हैं। जब तुम्हीं न होगे, तो वह सुखदा को लेकर चली जायँगी, मेर घर चौपट हो जायगा। मैं घर में अकेला भूत की तरह पड़ा रहूँगा।" जब अमर ने कहना न माना, तो लाला जी सजल नेत्र होकर कहते हैं—चलते समय घाव पर नमक न छिड़को, लल्लू ! बाप का हृदय नहीं मानता। कम से कम इतना तो करना कि कभी-कभी पत्र लिखते रहना। तुम मेरा मुँह न देखना चाहो लेकिन मुझे कभी आने-जाने से न रोकना। जहाँ रहो सुखी रहो, यही मेरा आशीर्वाद है। पृ० १४३

समरकांत के मन में अमर के प्रति कितना स्नेह था, यह हम अंत में समझते हैं। अमरकांत से उनकी नाराजी इसलिये थी कि वे उसे अपनी राह पर लाना चाहते थे और वह आता न था। उनके हृदय में एक प्रकार की कठोरता प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हो गई थी। जेल में सुखदा से मिलने पर वे अमर को खूब खरी-खोटी सुनाते हैं—"अब आँखें खुली होंगी। मेरा क्या बिगड़ा आप ठोकरें खा रहे होंगे। अब जेल में चक्की पीस रहे होंगे……जरा यह मुटमरदी देखो कि घर में किसी को खबर तक न दी। मैं दुश्मन था, नैना तो दुश्मन न थी, शांतिकुमार तो दुश्मन न थे आदि।" (पृ० ३२८) दूसरे ही क्षण जब सुखदा अमर के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करती है, तो "इस शीतल क्षमा ने जैसे उनके मुरझाये हुये पुत्र-स्नेह को हरा कर दिया। बोले—इसकी तो मैंने खूब जाँच की, बात कुछ नहीं थी। उसे क्रोध था, उसी क्रोध में जो कुछ मुँह में आया, बक गया। यह ऐब उसमें कभी न था लेकिन उस वक्त मैं भी अंधा हो रहा था। फिर मैं कहता हूँ, मिथ्या नहीं, सत्य ही सही, सोलहों आने सत्य सही, तो क्या संसार में जितने ऐसे मनुष्य हैं, उनकी गरदन मार दी जाती है

मैं बड़े-बड़े व्यभिचारियों के सामने मस्तक नवाता हूँ।......मनुष्य पर जब प्रेम का बन्धन नहीं होता, तभी वह व्यभिचार करने लगता है। भिक्षुक द्वार-द्वार इसीलिये जाता है कि एक द्वार से उसकी तृप्ति नहीं होती आदि।" (पृ०-३३९)। स्पष्ट है कि समरकांत अपने पुत्र की मनोभावनाओं को अच्छी तरह समझते थे। उससे विरोध का कारण केवल यही था कि अमर उनके स्नेह को तृप्त करने में असमर्थ रहा। अमर के प्रति उनका मनोमालिन्य दूर हो गया और दूसरे ही दिन वे अमर के लिये जेल में क्लास बदलवाने के लिये चल देते हैं।

समरकांत को समझने में केवल सुखदा ने सफलता पाई। वह अमर को समझाती हुई कहती है—"......लेकिन अब इस उम्र में तुम उन्हें नये रास्ते पर नहीं ला सकते। वह भी उसी रास्ते पर चल रहे हैं जिस पर सारी दुनिया चल रही है।......अब साठ बरस की उम्र में उन्हें उपदेश नहीं दिया जा सकता। कम से कम तुमको यह अधिकार नहीं है।......दादा जी पढ़े-लिखे आदमी हैं, दुनिया देख चुके हैं। अगर तुम्हारे जीवन में कुछ सत्य है तो उसका उन पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। आये दिन की झौड़ से तुम उन्हें और भी कठोर बनाये देते हो। बच्चे भी मार से जिद्दी हो जाते हैं। बूढ़ों की प्रकृति कुछ बच्चों की सी-ही होती है। बच्चों की भाँति उन्हें भी तुम सेवा और भक्ति से ही अपना सकते हो।"

समरकांत के हृदय में क़ितना अपरिमित स्नेह है, इसका पता सुखदा के जेल जाने के अवसर पर मिलता है। जब वे उसके जेल जाने का समाचार सुनते हैं, तो घबरा जाते हैं। जब सुखदा जमानत और पैरवी न करने की सलाह देती है, तो वे पहले क्रोध करते हैं परन्तु दिल में स्नेह होने के कारण ही, गिड़गिड़ाने लगते हैं। वे दुख से इतना कातर हो जाते हैं कि, उनके मुँह से निकल पड़ता है—"थोड़े दिन का मेहमान हूँ। मुझे मर जाने दो, फिर जो कुछ जी में आये, करना।" वे किस प्रकार अपनी बहू के लिये डिप्टी को घूस देने के लिये तैयार

हो जाते हैं, उसके जेल जाने के समय घर में भाग दौड़-धूप करते हैं, यह सब उनके वृद्ध हृदय के अपार स्नेह का परिचायक है । देखिये—

"सुखदा ने उनके चरणों पर सिर झुकाया । उन्होंने काँपते हाथों से उसे उठाकर आशीर्वाद दिया । फिर लल्लू को कलेजे से लगाकर फूट फूट कर रोने लगे । यह सारे घर को रोने का सिगनल था । आँसू तो पहले ही से निकल रहे थे । वह मूक रुदन जैसे अब बंधनों से मुक्त हो गया । शीतल धीर, गंभीर बुढ़ापा जब विह्वल हो जाता है, तो मानो पिंजरे के द्वार खुल जाते हैं और पक्षियों को रोकना असंभव हो जाता है । जब सत्तर वर्ष तक संसार के समर में जमा रहने वाला नायक हथियार डाल दे, रंगरूटों को कौन रोक सकता है ।" पृ० १८२

समरकांत में स्नेह, दया और ममता सभी कुछ है । बुढ़िया पठानिन का पति आजन्म उन्हीं के यहाँ नौकर रहा । उसके मर जाने के बाद भी उसकी विधवा को ५) प्रतिमास २० साल से लगातार देते आ रहे थे । जिस प्रकार भारतीय परिवार में बड़ा-बूढ़ा रक्षक समझा जाता है, उसी प्रकार समरकांत अपना कर्तव्य निभा रहे थे । समाज में प्रचलित आदर्शों को मान कर वे चलने वाले व्यक्ति थे । साधारण रूढ़िवादिता के पक्षपाती थे, अपने कुल की मर्यादा की रक्षा करना वे अपना धर्म समझते थे । वे सकीना को अमर की पत्नी के रूप में स्वीकार करने के लिये कभी तैयार नहीं हुए—हाँ अमर के वियोग को उन्होंने अवश्य झेल डाला । सुखदा के जेल जाने में उन्हें मर्यादा नष्ट होती हुई दिखाई दी । वे सुखदा से कहते हैं—"तुम्हें अपने नाम की लाज न हो, मुझे तो है । मैंने जिस मर्यादा की रक्षा के लिये अपने बेटे को त्याग दिया, उस मर्यादा को मैं तुम्हारे हाथों न मिटने दूँगा ।" मान-मर्यादा बढ़ाने के लिये वे अपने घर में शिशु उत्पन्न होने के अवसर पर नाच-गाना करवाने का प्रबन्ध करते हैं । वे कहते हैं—"कुछ लोग नाच-मुजरे का विरोध करते हैं, मुझे तो इससे कोई हानि नहीं दीखती । खुशी के अवसर पर चार भाई-बन्द, यार-दोस्त आते हैं, गाना-बजाना

सुनते हैं, प्रीति-भोज में शरीक होते हैं। यही जीवन के सुख हैं। और संसार में क्या रक्खा है।'' जब अमर इसका विरोध करता है, तो वे बिगड़ खड़े होते हैं—''तुम अपना विज्ञान यहाँ न घुसेड़ो। मैं तुमसे सलाह नहीं पूछ रहा हूँ। कोई प्रथा चलती है, तो उसका आधार भी होता है। श्रीराम के जन्मोत्सव में अप्सराओं का नाच हुआ था। हमारे समाज में इसे शुभ माना गया है।'' पृ० ७४

समरकांत को परम्पराओं से प्रेम है। इसलिये उन्होंने मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश पर आपत्ति की, गोलियाँ तक चलवा दीं परन्तु स्नेह ने उनका उद्धार भी कर दिया। स्नेह की बाढ़ में उनका सारा अंधविश्वास, धर्म-कर्म, सभी बह गया। अमर और सुखदा के जेल के बाद उनमें विशेष परिवर्तन हो गया। उन्होंने सलीम के साथ बैठकर भोजन कर लिया। वे स्वयं गाँवों में गये और ग्रामीण समाज में चेतना भर दी। शहर में आकर आन्दोलन का नेतृत्व भी किया और जेल चले गये। समरकांत उन लोगों में हैं, जो कट्टर विचारों के पक्षपाती होने पर भी समय को पहचान लेते हैं और अपने में तदनुकूल परिवर्तन कर डालते हैं।

प्रश्न—'कर्मभूमि' में अमरकांत के बाद सलीम का विशेष महत्व है। उसका चरित्र यथार्थ से ओत-प्रोत है—गुण हैं तो अवगुण भी। सलीम का चरित्र चित्रण करते हुए इसे सिद्ध कीजिए।

उत्तर—सलीम आज के जमाने का विद्यार्थी है। उसमें वह उच्चकोटि की मनस्विता नहीं जो मनुष्य के हाथ में नेतृत्व की शक्ति दे देती है। वह उन नब्बे प्रतिशत लोगों में है, जो बहती हुई हवा की दिशा में चलते हैं। प्रोफेसर शांतिकुमार और अमरकांत के सम्पर्क में रहकर वह राष्ट्रीयता का हामी बना रहा और बाद में एक उच्च अधिकारी बन बैठा। अमर के सम्पर्क में दुबारा आने पर वह नौकरी छोड़ बैठा।

उसमें इतना आकर्षक व्यक्तित्व नहीं कि वह दूसरे पर प्रभाव डाल सके। दूसरों के द्वारा वह आसानी से प्रभावित हो जाता है। उसकी यह प्रकृति उसकी परिस्थिति के अनुकूल थी। उसके पिता मोहम्मद हलीम नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में थे। घर में काफी धन था। खर्च के लिये काफी पैसा मिलता था। आदर्शवाद से वह कोसों दूर भागता था। रईस-वंश का होने के कारण, उसमें दया, उदारता, काव्यमयी प्रकृति आदि गुण आ गये थे। अन्याय उससे बर्दाश्त न होता था।

सलीम का शारीरिक व्यक्तित्व देखिये :—

"यह इस कक्षा के सम्पन्न लड़कों में था। बड़ा खिलाड़ी, बड़ा बैठकबाज। हाजिरी देकर गायब हो जाता, तो शाम की खबर लेता। हर महीने में फीस की दूनी रकम जुर्माना दिया करता था। गोरे रंग का लाँबा, छरहरा, शौकीन युवक था जिसके प्राण खेल में बसते थे।"

सलीम दरियादिल था। उसमें रुपये-पैसे के प्रति उदासीनता तो थी परन्तु रुपये को हाथ में रख कर मलना उसे पसंद न था। जुर्माना अदा करने में उसे तनिक भी कष्ट न होता था। दोस्तों के साथ दिल खोल कर खर्च करने में उसे संकोच न था। उसकी मित्रता में पूरी पवित्रता है। अमर के पास फीस जमा करने के लिये रुपये न थे। सलीम ने उसकी जगह फीस अदा करदी। सकीना की गरीबी का हाल सुनकर, उसने उसके कढ़े हुये रूमाल फौरन खरीद लिये। मुन्नी के मुकदमें की पैरवी में पूरी कोशिश धन लगाकर उसने की और जज साहब पर जूते बरसाने के लिये काले खाँ को तैयार करने में पूरा खर्च उठाने का वादा कर डाला। गाँव में गरीब जनता के कष्ट दूर करने के लिये काफी चंदा दे डाला। सलीम ने कभी भी रुपये का लोभ प्रदर्शित नहीं किया।

सलीम के चरित्र में सबसे अधिक आकर्षण गुण है, अमर के प्रति उसका प्रेम। कितने ऐसे मित्र देखने को मिलते हैं! अमर से वह पवित्र

हृदय से स्नेह करता है। विद्यार्थी जीवन में उनकी मित्रता स्थापित होने का कारण यह था कि सलीम अमर से गणित और अनुवाद में सहायता लिया करता था और अमर उसकी गजलों का काव्यानंद। सलीम उसकी आर्थिक कठिनाइयों को हल कर देता था। सकीना वाले मामले में उसने अमर के साथ पूरी सहानुभूति दिखाई। इस विषय में अमर केवल उसी को अपना विश्वासपात्र समझता था। सलीम से उसने सारा रहस्य बतलाया। मित्र के नाते सलीम ने उसे हल करने का प्रयत्न भी किया। समरकांत को वह चुपके से बुला लाया। अमर जब गाँव चला गया, तो सब से उसका सम्बन्ध टूट गया परंतु सलीम से बराबर वह पत्र-व्यवहार करता रहा। अमर के स्नेह के कारण ही उसने अपनी नियुक्ति उस ज़िले में करवाई जहाँ अमर रह रहा था। सलीम सकीना से प्रेम करने लगता है। वह उससे शादी भी करना चाहता है परन्तु उसे यह मालूम था कि सकीना और अमर एक दूसरे से प्रेम करते हैं। उसके मन में अमर के प्रति कभी दुर्भावना या द्वेष नहीं पैदा हुआ। प्रेमिका के कारण कितने ही मित्रों में फूट पड़ जाती है, एक दूसरे की जान के प्यासे बन बैठते हैं परन्तु सलीम ने प्रेम के लिये मित्रता की हत्या नहीं की। उसने इस प्रश्न को शांति-पूर्वक हल कर लिया। सकीना ने उससे स्पष्ट कह दिया कि मैं अमर को तभी छोड़ सकती हूँ जब वे ही उसे जवाब दे दें। इसलिये सलीम ने अमर की अनुमति प्राप्त कर लेने के बाद ही विवाह करने का निश्चय किया। अमर से वह कितना स्नेह करता है, यह बात उस प्रसंग पर प्रकट होती है, जिस समय मि० गजनवी अमर को गिर-फ्तार करने का आदेश देते हैं। पहले वह बहाने करके टालमटोल करता हैं परंतु अंत में नौकरी जाने के भय से उसे यह काम करने के लिये राजी होना पड़ता है। उस समय उसकी मनःस्थिति का चित्र देखिये—

"सलीम अपने डेरे पर लौटा, तो ऐसा रंजीदा था गोया अपना

कोई अज़ीज़ मर गया हो । आते-ही-आते सकीना, शांतिकुमार, लाला समरकांत और नैना सबों को एक-एक खत लिखकर अपनी मजबूरी और दुख प्रकट किया । सकीना को उसने लिखा—मेरे दिल पर इस वक्त जो गुज़र रही है, वह मैं तुमसे बयान नहीं कर सकता । शायद अपने जिगर पर खंजर चलाते हुये भी मुझे इससे ज्यादा दर्द न होता । जिसकी मुहब्बत मुझे यहाँ खींच लाई हैं, उसी को मैं आज इस जालिम हाथों से गिरफ्तार करने जा रहा हूँ ।···मैं खून के आँसू रो रहा हूँ ।···मुझ पर अमर के इतने एहसान हैं कि मुझे उसके पसीने की जगह अपना खून बहाना चाहिये था; पर मैं उसके खून का मजा ले रहा हूँ । मेरे गले में शिकारी का तौक़ है और उसके इशारे पर मैं वह सब कुछ करने पर मजबूर हूँ, जो मुझे न करना लाजिम था ।" पृ० ३२४

मित्र-प्रेम, कर्तव्य और स्वार्थ के बीच तेहरा संघर्ष चल रहा था। उसने अमर को गिरफ्तार किया, परंतु वह आत्मा के स्वरों को न दबा सका । उसके मन में भीषण प्रतिक्रिया हुई और उसने अपनी नौकरी से अंत में इस्तीफा दे दिया । वास्तव में सलीम में स्वदेश के प्रति अनुराग था । अमर के साथ वह सभी जलसों में भाग लेता था परन्तु अमीर घर के नवयुवकों की भाँति उसे सुखमय जीवन से प्रेम था । वह स्वयं एक बार जीवन का उन्मुक्त उपयोग करना चाहता था । उसके पिता ने इस बात पर जोर भी दिया । सलीम के चरित्र में हम आदर्श और सुखवाद का अद्भुत संघर्ष देखते हैं । यह मानना पड़ेगा कि बीज रूप में उसमें देश-प्रेम अवश्य था । उस चिनगारी को विलासिता की राख ने दबा रक्खा था । परिस्थिति के झोंकों ने उस राख को उड़ा दिया और फिर उसने चारों ओर आग लगा दी। सलीम ने सुख की आशा में राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग होकर नौकरी स्वीकार कर ली थी परन्तु अमर की गिरफ्तारी, किसानों की दुर्दशा, सकीना के प्रेम ने उसे फिर उसी क्षेत्र में लाकर खड़ा

कर दिया। सलीम के चरित्र में हम सब जगह आदर्श की विजय देखते हैं।

प्रेम के क्षेत्र में भी सलीम को अन्त में हम ऊँचा उठते हुए पाते हैं। विद्यार्थी जीवन में, जब अमर ने सकीना से प्रेम करना आरम्भ किया था उसने सलीम से इस सम्बन्ध में बतलाया, तो सलीम ने उस प्रेम की हँसी उड़ाई। "प्रेम को वह वासना मात्र समझता था। उस जरा से उद्‌गार को इतना वृहत् रूप देना, उसके लिये कुरबानियाँ करना सारी दुनिया में बदनाम होना और चारों ओर एक तहलका मचा देना, उसे पागलपन मालूम होता था।" (पृ० १०१) उसने बार-बार अमर को उस जुलाहे की छोकरी से दूर हटने की सलाह दी। प्रेम के सम्बन्ध में उसके विचार उसी तरह उच्छृंखलतापूर्ण थे, जिस प्रकार के विचार प्रायः अनुभवहीन विद्यार्थियों के होते हैं। उसमें प्रवृति प्रधान होती है। अमर के मुँह पर वह हँसी उड़ाता है। दोनों अभिन्न मित्र हैं, इसलिये ऐसे प्रसंग पर सलीम की बात हस्य के रूप में ली जा सकती है, अन्यथा उसमें शोहदेपन और निर्लज्जता की बू है। वह कहता है—"माशूक तो यार तुमने अच्छा छाँटा······अगर उस हसीना ने बनाये हैं तो फी रूमाल पाँच रुपया। बुढ़िया या किसी और ने बनाये हैं तो फी रूमाल चार आने।········ अच्छा उसका नाम सकीना है तो मैं फी रूमाल ५) दे दूँगा। शर्त यह है कि तुम मुझे उसका घर दिखा दो।" (पृ० ९०) सलीम की इस प्रकार की बातचीत अनुचित मालूम पड़ती है। दूसरी ओर मूलरूप में उसके हृदय में प्रेम तो था ही। उसने कवि-प्रकृति पाई थी। उसका नमूना उसकी शायरी हैं। सलीम ऐसे लोगों में है, जो कहने को मुँह से चाहे जितनी अश्लीलतापूर्ण बात करें पर मन में प्रेम होता ही है। यदि गहरी ठेस लग जाय तो सँभल जाते हैं। सकीना के अदर्श-प्रेम ने उसकी वासना पर विजय पाई—

"उधर सलीम के जीवन में एक परिवर्तन हो गया था। हँसोड़ तो

उतनाही था, पर उतना शौकीन, उतना रसिक न था। शायरी से भी अब उतना प्रेम न रहा। जो पुरानी अरुचि थी, अब वह बिल्कुल जाती रही। ...इधर वह कई बार सकीना के घर गया और दोनों में गुप्त-रूप से पत्र-व्यवहार भी हो रहा था। अमर के उदासीन हो जाने पर सकीना उसके अतीत प्रेम को कितनी एकाग्रता से पाले हुए थी, इस अनुराग ने सलीम को परास्त कर दिया था। इस ज्योति से वह अब अपने जीवन को आलोकित करने के लिये विकल हो रहा था। अपने मामा से सकीना के उस अपार प्रेम का वृतान्त सुन-सुन कर वह बहुधा रो दिया करता था। उसका कवि-हृदय जो भ्रमर की भाँति नये-नये पुष्पों से रस लिया करता था, अब संयमित अनुराग से परिपूर्ण होकर उसके जीवन में एक विशाल साधना की सृष्टि कर रहा था।" पृ० २४१।

सच्चे और पवित्र प्रेम के आते ही मन में गंभीरता आ जाती है। हृदय में इतना प्रकाश उत्पन्न हो जाता है कि उस प्रकाश में प्रेमिका देवी के रूप में नजर आती है—

माशूक का रुतबा भी महशर में कोई देखे,
अल्लाह में भी मजनू को लैला नजर आती है।

सलीम के लिये वह जुलाहे की छोकरी, देवी बन गई। अमर के सामने उसने सकीना के सम्बन्ध में बड़े सम्मानपूर्ण शब्दों में अपने विचार प्रकट किये :—

सकीना प्यार करने की चीज नहीं, पूजने की चीज है। कम-से-कम मुझे वह ऐसी ही मालूम होती है। मैं कसम तो नहीं खाता कि उसकी शादी हो जाने पर कंठी-माला पहन लूंगा, लेकिन इतना जानता हूँ कि उसे पाकर मैं जिन्दगी में कुछ कर सकूँगा।" पृ० २९१

सलीम वास्तव में सकीना से सच्चे हृदय से प्यार करने लगा था। सकीना का पूर्व जीवन पूर्णरूप से शुद्ध न था, फिर वह अमर से प्रेम

कर चुकी थी परन्तु सलीम ने इस ओर ध्यान न देकर उसके गुणों की ओर ध्यान दिया। सकीना के प्रति वह इतना आदर रखता है कि उसकी नजरों में गिर जाना उसके लिये सबसे बड़ा दंड है। अमर की गिरफ्तारी के लिये उसे तैयारी करनी पड़ी। इससे सकीना कितनी दुखी होगी, इसका अनुमान उसने स्वयं कर लिया। उसने अमर को पकड़ने के पहले ही बड़े करुण शब्दों में अपने को निरपराध घोषित करते हुये सकीना से पत्र द्वारा क्षमा-याचना की। सलीम ने सकीना से प्रेम किया, बड़े घर के होते हुये भी उसने उससे विवाह कर ही लिया।

सलीम में एक प्रकार की उच्छृंखलता और उद्दंडता थी। हँसी-मज़ाक में उसकी विशेष रुचि थी। किसी विषय पर उसे अधिक देर तक विचार करना पसंद न था। बड़ी जल्दी जोश में आ- जाना और डाँट-फटकार खाकर चुप हो जाना–उसका स्वभाव था। मुन्नी के मामले में जज साहब पर जूता चलाने की योजना सलीम ने ही बनायी। प्रोफे-सर शांतिकुमार के सामने काले खाँ से इस प्रकार उसने बातें कीं मानों जज को जूते से मारना एक साधारण सी बात हो। जब शांतिकुमार ने उसे फटकारना आरम्भ किया तो, फौरन चुप भी हो गया। बात करता, हँसी के फौवारे छोड़ देता था। अमर के साथ तो खास तौर से वह हँसी-मजाक करता था। अमर के नाम उसने जो पत्र (पृ० १६७) लिखा था, वह उसकी हास्यप्रियता का नमूना था। जीवन के संबंध में सलीम के विचार अधिक दार्शनिकतापूर्ण नहीं हैं। किसी प्रकार भी हो, सफलता मिलनी चाहिये। अमर की आदर्शवादिता को वह अच्छा नहीं समझता था। अमर का सहपाठी होते हुये भी वह उससे भिन्न था। संसार की वास्तविकता का उसे कहीं अधिक अनुभव था। उसने सकीना के संबंध में अमर को ठोस सलाह दी कि उसके पास अधिक जाना बदनामी का कारण होगा। अमर से वह स्पष्ट कहता है "इल्मी बहस दूसरी चीज है, उस पर अमल करना दूसरी चीज है। बगावत पर इल्मी बहस कीजिये, लोक शौक से सुनेंगे। बगावत करने के लिये

तलवार उठाइए और आप सारी सोसाइटी के दुश्मन हो जायँगे।" सलीम स्वभाव से व्यावहारिक था। यही नहीं, सफलता प्राप्ति के लिये वह अनुचित उपायों का प्रयोग करने में न हिचकता था और उनका प्रयोग सफलतापूर्वक करता था। यह देखकर उसके चरित्र के प्रति अश्रद्धा पैदा हो जाती है। स्वयं प्रो० शांतिकुमार उसके संबंध में सोचते हैं—

"इधर आठ दिन से सलीम नहीं आया। अपने आई० सी० एस० की धुन है।...कहाँ तो नौकरी के नाम से घृणा थी। नौजवान सभा के मेम्बर, कांग्रेस के भी मेम्बर...कहाँ अब आई० सी० एस० की पड़ी है।...एक इम्तहान में पास न हो सकता था। कहीं परचे उड़ाये, कहीं नकल की, कहीं रिश्वत दी। पक्का शोहदा है और ऐसे लोग आई० सी० एस० होंगे।"

सलीम इन्हीं उपायों द्वारा चुनाव में आ ही गया और एक अफसर बन गया। उसकी नजरों में सफलता का मूल्य है, साधन कितने ही बुरे हों। दूसरी ओर सलीम में कुछ गुण भी हैं। उसमें वीरता है और साहस है। जब गाँव में बलात्कार की घटना होती है, तो सलीम की वीरता का नमूना देखने का मौका मिलता है। उसकी स्टिक ने बड़ी आसानी से ही दो गोरों को जमीन पर सुला दिया। (पृ० २९) अन्य स्थल पर गाँव वालों की ओर से हम सलीम को युद्ध करता हुआ पाते हैं। गाँव में आन्दोलन छिड़ा, सलीम ने त्यागपत्र दे दिया और आन्दोलन का नेतृत्व करने लगा। इसी बीच में लगान अदा करने पर गाँव वालों के पशु कुर्क कर लिये गये। सलीम ने इसका विरोध किया। उसने तेग मुहम्मद से कुश्ती भी लड़ी। घोष महोदय से भी द्वन्द्व युद्ध उसे करना पड़ा। उसे जेल जाना पड़ा।

सलीम में शांतिप्रियता अधिक न थी। वह अमर की भाँति गाँधी वाद का पक्का समर्थक न था। वह समय आने पर उत्तेजित हो उठता था और मारपीट करने पर तुल जाता था। सलीम का व्यक्तित्व यथार्थ से ओत-प्रोत है।

प्रश्न—'कर्मभूमि' में बुद्धि-वादी वर्ग के प्रतिनिधि प्रो० शांतिकुमार का चरित्रचित्रण कीजिए।

उत्तर—प्रोफेसर शांतिकुमार बुद्धिवादी-वर्ग के व्यक्ति हैं। उन्होंने उच्च-शिक्षा विदेश में जाकर प्राप्त की। इसलिये वहीं पर गुलामी का अनुभव उन्हें मिला। भारत में लौटकर वे यूनिवर्सिटी के अध्यापक बन गये। उनके व्यक्तित्व की झाँकी देखिये—

"शांतिकुमार की अवस्था कोई ३५ की थी। गोरे-चिट्टे, रूपवान आदमी थे। वेषभूषा अंग्रेजी थी, और पहली नजर में अंग्रेज ही मालूम होते थे क्योंकि आँखें उनकी नीली थीं और बाल भी भूरे थे। आक्सफोर्ड से डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर लाये थे। विवाह के कट्टर विरोधी, स्वतंत्रता-प्रेम के कट्टर भक्त, बहुत ही प्रसन्न मुख, सहृदय, सेवाशील व्यक्ति थे। मजाक का कोई अवसर पाकर न चूकते थे। छात्रों से मित्र भाव रखते थे। राजनैतिक आन्दोलनों में खूब भाग लेते थे, पर गुप्त रूप से। खुले मैदान में न आते। हाँ, सामाजिक क्षेत्र में खूब गरजते थे।"

शांतिकुमार में प्रेरक शक्ति थी। उन्होंने कभी भी समय आने पर मुख नहीं मोड़ा। उन्हीं से प्रभावित होकर अमर और सलीम ने सुधार-क्षेत्र में पदार्पण किया। अपने शिष्यों के साथ वह सहयोग करते हैं। किसी समस्या या विषम परिस्थिति के आने पर वे उसका सामना करते हैं। एक बार जब वे अपने छात्रों के साथ गाँव में घूमने निकलते हैं, तो वहाँ बलात्कार की दुर्घटना सामने आती है। शांतिकुमार फौरन एक गोरे से भिड़ जाते हैं। इस अवसर पर उनके गोली लगती है (पृ० २९) परन्तु वे दृढ़तापूर्वक परिस्थिति का सामना करते हैं। वास्तव में वे अन्याय नहीं सहन कर सकते। मुन्नी के मुकदमे में भी उन्होंने काफी दिलचस्पी ली। चंदा इकट्ठा करना, पैरवी करना आदि सभी काम उन्होंने अपने जिम्मे ले लिये। इसी प्रकार हरिजनों के मंदिर-प्रवेश के प्रश्न पर उन्होंने समाज भर का विरोध किया। उन पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठाई। यही नहीं, इस सम्बन्ध में

उन्हें करारी मार भी खानी पड़ी। सेवा-आश्रम की स्थापना के सम्बन्ध में उन्हें जेल भी जाना पड़ा। सारे कष्ट उन्होंने सहर्ष स्वीकार किए।

प्रोफेसर शांतिकुमार में ज्ञानजनित गंभीरता है। वे हरएक पहलू पर सोच-समझकर काम करते हैं। बदले की भावना तो उनमें है ही नहीं। जब गोरे ने उन पर गोली चलाई और सलीम ने उसे पीटना चाहा, तो उन्होंने उसे मना कर दिया। मुन्नी के मुकदमे के अवसर पर सलीम ने जज साहब के जूते लगवाने की योजना बनाई। शांति कुमार ने इसका विरोध किया। उनकी समझ में जज का कोई दोष न था यदि वह न्यायोचित ढंग से फैसला दे देता। वे कहते हैं—

"तो यह कहो, तुम लोग बदमाशी पर उतर आये।···मैं इसे कमीनापन कहता हूँ। तुम्हें यह समझने का कोई हक नहीं है कि जज साहब अपने अफसरों को खुश करने के लिये इन्साफ का खून करेंगे।"

प्रोफेसर शांतिकुमार में एक प्रकार का धैर्य और शांति हमें देखने को मिलती है। साथ ही वे रचनात्मक क्रांति के पक्षपाती हैं। वे बदले हुए युग को पहचानते हैं। धार्मिकता, रूढ़िवादिता और कट्टरता के वे घोर विरोधी हैं। उनके वार्तालापों से ऐसा ही पता चलता है। देखिये—

"पूछो इस जन्मोत्सव में रक्खा क्या है। मर्द का काम है संग्राम में डटे रहना। खुशियाँ मनाना तो विलासियों का काम है।" पृ० ७७

"नाचना विलास की वस्तु नहीं, भक्ति और आध्यात्मिक आनन्द की वस्तु है। अपनी माताओं-बहनों का अपमान करना है।" पृ० ७८

"अंधे भक्तों की आँखों में धूल झोंककर यह हलवे खाने को न मिलेंगे महराज, समझ गये। अब वह समय आ रहा है कि जब भगवान भी पानी से स्नान करेंगे, दूध से नहीं।" पृ० २०८

इन क्रांतिकारी विचारों के साथ-साथ प्रोफेसर शांतिकुमार में वक्तृता-शक्ति भी थी। वे श्रोताओं को अपने भाषण से मंत्र-मुग्ध कर देते थे। ऐसे अवसर पर "आदमियों का एक समुद्र उमड़ा हुआ था और डाक्टर साहब की प्रतिभा उस समुद्र के ऊपर किसी विशाल व्यापक आत्मा की भाँति छाई हुई थी।" वे अछूतों और दलितों को ऊपर उठाने

की शक्ति रखते हैं। वे समाजशास्त्र के विद्यार्थी हैं और कुसंस्कारों के मोटे परदे को फाड़कर शुद्ध सत्य देखने की शक्ति रखते हैं।

समाज-सेवा की भावना उनमें प्रारम्भ से थी। इसीलिये इन्होंने आजन्म अविवाहित रहने का व्रत ले लिया। यद्यपि वे खुलकर सरकार विरोधी या समाज-विरोधी कार्य न करते थे, परन्तु वे इस ओर प्रयत्नशील अवश्य रहते थे। क्रियात्मक रूप से कार्य करने के लिये उन्होंने 'सेवाश्रम' नाम की संस्था को जन्म दिया। यहाँ उन्होंने नई शिक्षा-पद्धति पर प्रयोग किये। संस्था के चलाने में उन्हें कठिनाई होती है—विशेष रूप से धन की कमी है। साथ ही वे अपना पूरा समय इस संस्था के लिये नहीं दे पाते क्योंकि वे विश्वविद्यालय में नौकर थे और इतनी आय वाली नौकरी छोड़ना साधारण काम नहीं। इसे अमर स्वार्थपरता समझता है और धिक्कारता है। प्रोफेसर साहब इसे व्यावहारिकता समझते हैं। वास्तव में यह उनके चरित्र का गुण है। मनुष्य को अपनी परिस्थिति देखकर ही त्याग करना चाहिये। जब आगे चल वे अपनी परिस्थिति दृढ़ बना लेते हैं और रेणुका देवी अपनी कई लाख की सम्पत्ति संस्था को दे देती हैं, तो वे नौकरी से त्यागपत्र देकर प्राणपण से इस महत्वपूर्ण कार्य में जुट जाते हैं। यह उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था कि सुखदा, समरकांत, रेणुका आदि समाज-सुधार की ओर प्रवृत्त हुए। साथ ही उनमें मनुष्योचित निर्बलता है। वे सेवा के बदले कम-से-कम थोड़ी-सी प्रशंसा अवश्य चाहते हैं। जब हरिजन आंदोलन की सफलता का श्रेय सुखदा को मिला, तो "यह दुख उन्हें और भी घुलाये डालता था। यद्यपि अंतरंग मित्रों से भी कभी उन्होंने अपनी मनोव्यथा नहीं कही; पर यह काँटा खटकता अवश्य था। अगर सुखदा स्त्री न होती और वह भी प्रिय शिष्य और मित्र की, तो कदाचित वह शहर को छोड़कर भाग जाते।" पृ० २२३

प्रोफेसर शांतिकुमार के जीवन में नैना का क्या स्थान था, इसे समझे बिना उनके चरित्र का विश्लेषण अधूरा रहेग्रा। वे विद्वान थे, संयम और ब्रह्मचर्य धारण करने से उसके जीवन में नीरसता आ गई

थी। साथ ही यौवन-काल की असंतुष्ट प्रेम-प्रवृत्ति का रूप उनके जीवन में कहीं-कहीं देखने को मिलता है यद्यपि उन्होंने सर्वत्र इसका सफलता-पूर्वक दमन और ऊर्जस्वीकरण कर डाला। उनके पवित्र प्रेम की झलक उनकी नैना के प्रति अगाध भक्ति से मिलती है। अमर के शिशु को गोद में लेकर और नैना का दर्शन करके उनके हृदय को असीम तृप्ति मिलती है। नैना के विवाह से उन्हें कष्ट होता है और ससुराल में भी उसको दुखी जान कर वे रो पड़ते हैं। उनकी व्यावहारिकता की प्रशंसा और उनके चरित्र का मूल्यांकन सकीना के शब्दों में देखिये—

'मैं समझती हूँ, डाक्टर साहब का ख्याल ठीक है। भूखे पेट खुदा की याद नहीं हो सकती। जिसके सिर रोजी की फिक्र सवार है, वह कौम की खिदमत क्या करेगा और करेगा तो अमानत में खयानत... जो आदमी अपने उसूल के खिलाफ नौकरी करके एक काम की बुनियाद डालता है, वह उसके लिये कितनी कुरबानी कर रहा है।...वह अपने जमीर तक की कुरबानी कर देता है। मैं तो ऐसे आदमी को कहीं ज्यादा इज्जत के लायक समझती हूँ।' पृ० ११२

प्रश्न—अमरकांत को कर्मभूमि के रंगमंच पर अवतरित होने में सुखदा का विशेष योग है। उसका चरित्रचित्रण करते हुए इसे स्पष्टतः समझाइए।

उत्तर—अमर की पत्नी सुखदा और अमर के स्वभाव में एक विचित्र वैषम्य है, जिसके कारण ही 'कर्मभूमि' की कथा का सूत्रपात होता है। वह एक धनी कुल में उत्पन्न हुई। माता की इकलौती संतान होने के कारण जिस प्यार की वर्षा उस पर हुई, उसी के फलस्वरूप "त्याग की जगह भोग, शील की जगह तेज और कोमल की जगह तीव्र का संस्कार किया था।" (पृ० ११) सिकुड़ने और सिमटने का उसे अभ्यास न था। थी वह स्त्री, पर उसने स्वभाव पाया था पुरुष का। वह अपने पति के भाव जगत् को पहचान न सकी—यही उसकी सबसे बड़ी असफलता है। स्त्री

पुरुष के कोमल-पक्ष की पूरक होती है, सुखदा ने इसे न समझा। स्त्रीका आकर्षण है उसकी कोमलता, आत्मसमर्पण और अवलम्बन। वह एक लता के समान होती है, जिसे पुरुषरूपी-वृक्ष का सहारा चाहिए। सुखदा स्वयं वृक्ष थी। 'वह युवक-प्रकृति की युवती' थी। वह और अमर इस प्रकार रहते थे, मानों "दो भिन्न जलवायु के पक्षी एक पिंजरे में बन्द कर दिये गये हों।"

सुखदा ने कभी अभाव न जाना था, जीवन की कठिनाइयाँ न सही थीं। वह भोग-विलास को जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु समझती थी। इसी से वह अपने त्यागी, आत्म-संतोषी और आत्म-समर्पण चाहने वाले पति को न समझ सकी। वह उसपर शासन करना चाहती थी, सहानुभूति के स्थान पर वह दया दिखाती थी। अमर के शब्दों में वह सुन्दर होते हुये संगमरमर की मूर्ति थी। वह अमर के अतृप्त-हृदय को प्रेम-जल से तृप्त न कर सकी। स्त्री होते हुए भी वह गुणों से वंचित है, जिनके बल पर स्त्री-पुरुष के हृदय पर शासन करती है (सकीना से तुलना करिये) उसकी माँ ने (पृ० २४-२५) उसे चेतावनी दी—'बेटी, बुरा न मानना, मुझे तो तेरा ही दोष दिखता है। तुझे अपने रूप का गर्व है। तू समझती है, वह तेरे रूप पर मुग्ध होकर तेरे पैरों पर सिर रगड़ेगा।...पहले स्नेह और सेवा से पोला करने के बाद तभी प्रेम का बीज बोया जा सकता है।' पर सुखदा ने स्पष्ट कह दिया—"वह चाहते हैं मैं उनके साथ तपस्विनी बनकर रहूँ। रूखा-सूखा खाऊँ, मोटा-झोटा पहनूँ...मुझसे यह न होगा, चाहे सदैव के लिये उनसे नाता ही टूट जाय। वह अपने मन की करेंगे... तो मैं भी उनका मुँह न जोहूँगी।" सुखदा की यह विचारधारा ही उसकी असफलता का कारण बन गई। उसको सकीना ने भी उस प्रेम का उपदेश दिया जिसमें प्रेमी अपने व्यक्तित्व को भूल कर उसे प्रियतम के व्यक्तित्व में लीन कर देता है। (पृ० २५१) सुखदा ने पराजित होकर भी कभी अपनी पराजय नहीं स्वीकार की। यह उसकी अहंभावना है, अहंकार है।

वह स्त्री-स्वतंत्रता की पक्षपातिनी है। अधिकार की भावना ने उसे उन्मत्त कर दिया था। स्त्री-पुरुष की समानता के विश्वास ने उसे

मदांध कर दिया था। वह अमर से घृणा करने लगती है, एक बार भी उसने अपनी भूल पर विचार न किया। सकीना से प्रेम-संदेश पाकर भी वह कहती है—"उन्होंने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैं ऐसे कमीने आदमी की खुशामद नहीं कर सकती···उनकी खुशामद तो मैं मरते दम तक नहीं कर सकती।" (पृ० २०३ –यह शायद उसकी निराशा का द्योतक है। अत्यधिक निराशा में मनुष्य अपने को कहीं अधिक वीर समझने लगता है। सुखदा विचारशील थी। अंत में उसने अपनी भूल को समझा और नैना से उसने स्वीकार किया—"मैं इससे (सकीना) सहानुभूति करने आई थी, पर यहाँ से परास्त होकर जा रही हूँ।···मैंने उससे हँसकर बोलने, परिहास करने और अपने रूप और यौवन के प्रदर्शन में ही अपने कर्तव्य का अंत समझ लिया, न कभी प्रेम किया और न प्रेम पाया।··· इस छोकरी ने मेरी आँखें खोल दीं।" (पृ० २०४) सुखदा में शिक्षा से लाभ उठाने की शक्ति थी। इसीलिए उसने अंत में अपनी हार को जीत में बदल दिया—अपने खोये हुये पति को प्राप्त कर लिया।

सुखदा में अन्य स्त्रियोचित गुण भी हैं। उसके मन में दया है। मुन्नी की पैरवी के लिये वह अमर से बार-बार कहती है। समरकांत जब बीमार पड़ते हैं, तो वह फौरन सारा मनोमालिन्य भूल कर उनके पास जाती है और उनकी सेवा में जुट जाती है। गृहस्थी के काम में वह इतनी निपुण है कि घर में उसकी तूती बोलती है। दूसरों पर शासन करने की उसमें क्षमता है। यही कारण था कि वह हरिजन आन्दोलन का सफलतापूर्वक नेतृत्व कर सकी। जिस बात पर वह अड़ जाती थी, उसको वह पूरा करके छोड़ती थी। जिस तर्क-शक्ति के बल पर वह अमर को दबा रखती थी, उसी के कारण उसमें वक्तृत्व शक्ति भी पैदा हो गयी। वह जन-समूह को प्रभावित कर सकती थी। सुखदा अपने ससुर का आदर करती थी। उनकी मनोभावनाओं को वही अच्छी तरह समझ सकी। उसने बार-बार अमर को समझाया कि समरकांत का विरोध करके उन्हें नये मार्ग पर नहीं लाया

सकता। पति से असंतुष्ट रहते हुये भी उसने सदैव पति का साथ दिया। जब समरकांत अमर से असंतुष्ट हो गये और अमर उनसे अलग हो गया, तो वह भी सारे सुखों पर लात मारकर उसी के साथ निकल गई। उस समय वह घोर परिश्रम करती है। एक जगह उसे साधारण नौकरी भी करनी पड़ी। जब वह राजनैतिक क्षेत्र में उतरी तो, उसके जीवन का नमूना देखने योग्य है—"उसे खुद अब उस मकान में रहते, अच्छे वस्त्र पहनते, अच्छे पदार्थ खाते ग्लानि होती थी। नौकरों से उसने काम लेना छोड़ दिया। अपनी धोती खुद छाँटती, झाड़ू घर में खुद लगाती। वह जो आठ बजे सोकर उठती थी, अब मुँह अँधेरे उठती और घर के काम-काज में लग जाती।"

सुखदा ने अपने जीवन में सिद्ध कर दिया कि स्त्रियाँ सदैव अबलायें ही नहीं रहतीं। समय पड़ने पर वे कितनी प्रबलायें हो सकती हैं, यह उसने करके दिखा दिया। पति द्वारा परित्यक्ता होने पर भी उसने जीवन संग्राम से मुँह नहीं मोड़ा। वह सदा स्वामिनी बनकर रही। अंत में अमर को ही उसके सामने झुकना पड़ा। सुखदा ने अपनी भूल समझी पर उसने अमर से झुक कर क्षमा-याचना नहीं की। अपने त्याग और बलिदान द्वारा उसने अपने स्थान को फिर पा लिया। उसने दिखा दिया कि "सुखदा स्वच्छंद रूप से अपने लिए एक नया मार्ग निकाल सकती है, उसके लिए उसकी लेश-मात्र भी आवश्यकता नहीं।" (पृ० २९०) बस, इस आत्मनिर्भरता के गुण ने अमर को पराजित कर दिया। सुखदा ऐसे व्यक्तियों में है जो अपनी दृढ़ता के आगे संसार को झुका सकते हैं।

प्रश्न—'सकीना प्यार करने की नहीं पूजने की चीज है।' सलीम के इस कथन पर विचार करते हुए 'कर्मभूमि' की श्रेष्ठतम पात्री का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—स्त्री पुरुष की पूरक है। स्त्री में ममता, कोमलता, सेवा और अनुराग आदि ऐसे गुण होते हैं, जो पुरुष में नहीं होते। इन्हीं गुणों के आधार पर स्त्री अपना महत्व स्थिर रक्खे हुये हैं। इन्हीं के अभाव में वह

पुरुष की नजरों में गिर सकती है और इनके होते हुए वह पुरुष के हृदय पर राज्य करती है। सकीना में यह सभी गुण हैं, इसलिये सुखदा के मुकाबिले में रूप-रंग और वैभव की चमक न रखते हुए भी वह सफल होती है। सुखदा की भाँति उसका शारीरिक व्यक्तित्व सुन्दर नहीं परंतु उपर्युक्त गुणों के समन्वय ने उसके मानसिक व्यक्तित्व में एक मिठास और सलोनापन पैदा कर दिया था। उसका रेखाचित्र देखिये:—"सकीना का रंग साँवला था और रूपरेखा देखते हुये वह सुन्दरी न कही जा सकती थी, अंग-प्रत्यंग का गठन भी कविवर्णित उपमाओं से मेल न खाता था; पर रंग-रूप, चाल-ढाल, शील-संकोच, इन सबने मिल-जुलकर उसे आकर्षक शोभा प्रदान कर दी थी। वह बड़ी-बड़ी पलकों से आँख छिपाए, देह चुराये, शोभा की सुगंध और ज्योति फैलाती हुई, इस तरह निकल गई, जैसे स्वप्नचित्र एक झलक दिखाकर मिट गया हो।" (पृ० ४४)

सकीना वास्तव में कूड़े-करकट में उत्पन्न पौदे की फूल थी, जो अपना सौरभ बिखेर रही थी। यदि किसी उद्यान में खिलती तो किसी के गले के हार में गूँथ दी जाती। यहाँ खिला हुआ देखकर केवल आश्चर्य किया जा सकता था। अमर-भ्रमर ने उसे पाया और वह उसी में रम गया। उसका भोलापन, उसकी शिष्टता ने अमर को मोहित कर लिया। सकीना में अपनत्व था, उसने अमर के हृदय को समझा, उसके दर्द को जाना। अमर अनन्य अनुराग चाहता था, सकीना ने उसे वही दिया। सकीना को जीवन का अनुभव था। गरीब होने के कारण, उससे कितने ही लोगों ने खेलना चाहा। वह सुखदा से यह बात स्वीकार करती है—"अम्मा बड़ी पासा हैं, मुझे देवी समझती होंगी, किसी जवान को दरवाजे पर खड़ा नहीं होने देतीं, लेकिन इस वक्त बात आ पड़ी है, तो कहना पड़ेगा कि मुझे मरदों को देखने और परखने के काफी मौके मिले हैं। सभी ने मुझे दिल बहलाव की चीज समझा और मेरी गरीबी से अपना मतलब चाहा।" (पृ० २०२) इस अनुभव ने ही उसे अमरकांत के निस्वार्थ प्रेम का मूल्य

समझना सिखाया। सकीना जैसा प्रेम चाहती थी, उसे वही मिल गया —उसकी आवश्यकता से भी अधिक—"जहाँ उसने एक चुटकी आटे का सवाल किया था, वहाँ दाता ने ज्योनार का एक बड़ा थाल लेकर उसके सामने रख दिया। उसके छोटे-से पात्र में इतनी जगह कहाँ है ? उसकी समझ में नहीं आता कि उस विभूति को कैसे समेटे। आँचल और दामन सब कुछ भर जाने पर भी तो वह उसे समेट न सकेगी।"

सकीना के प्रेम में त्याग का अंश अत्यधिक है। उसने अमर की बदनामी का ख्याल करते हुये उससे विवाह करने या उसके साथ भाग चलने को तैयार नहीं होती—चाहती तो कर सकती थी। वह स्पष्ट कहती है—"मेरे कारण आपकी रुसवाई हो, उसके पहले मैं जान दे दूँगी। मैं आपकी जिंदगी में दाग न लगाऊँगी। इस मुहब्बत को ग़रज़ से पाक रखना चाहती हूँ। सिर्फ यकीन कि मैं तुम्हारी हूँ, मेरे लिये काफी है।" इसीलिये वह विवाह करने से इनकार कर देती है। नारी-प्रेम का ऊँचा आदर्श उसने सामने रखा है—"औरत की जिन्दगी और है किसलिये बहन जी ! वह अपने दिल से लाचार है, जिससे वफ़ा की उम्मीद करती है, वही दग़ा करता है।......शिकवा-शिकायत, रोना-धोना, बेताबी और बेकरारी यही तो मुहब्बत के मजे हैं। फिर मैं तो वफा की उम्मीद भी नहीं करती थी। मैं उस वक्त भी इतना जानती थी कि यह आँधी दो-चार घड़ी की है...मैं इस कागज की नाव पर बैठ कर भी सागर पार कर दूँगी।" (पृ० २०२) अमर कुछ दिनों बाद उसकी ओर से विरक्त हो गया, मगर उसने तब तक इन्तजार किया जब तक अमर ने स्वयं उसे सलीम के साथ विवाह करने की अनुमति नहीं दे दी।

सकीना के हृदय में सहानुभूति और दया है। वहमुन्नी के मुकदमे में चंदा देती है। परिश्रमी होने के कारण उसने गरीबी के संकटों से छुटकारा पाया। घर की अवस्था उसने सिलाई-कढ़ाई का काम करके बदल दी। धीरे-धीरे उसने पढ़ना-लिखना भी सीख लिया। अमर के सम्पर्क में आकर उसने अपने जीवन को पवित्र बना लिया। डाक्टर शांतिकुमार की शिक्षा-योजना

के संबंध में जिस बुद्धिमानीपूर्वक विचार प्रकट करके (पृ० १२१) अमर के दृष्टिकोण को बदल दिया, उससे उसकी विचार-शक्ति का परिचय मिलता है। प्रेम के संबंध में, सुखदा के साथ और अमर के साथ वार्तालाप करते हुए उसने जो विचार व्यक्त किये हैं, उससे सकीना के उच्च-मनस्तत्व का पता चलता है। उसमें प्रेम की गंभीरता है, उसके आगे सुखदा जैसी रूपवती नारी को पराजित होकर कहना पड़ा—"इसके विश्वास ने मुझे परास्त कर दिया। इस छोकरी में वे सभी गुण हैं, जो पुरुष को आकृष्ट करते हैं। ऐसी ही स्त्रियाँ पुरुषों के हृदय पर राज्य करती हैं।" (पृ० २०४) सलीम के शब्दों में, "सकीना प्यार करने की चीज नहीं, पूजने की चीज है। कम से कम मुझे तो वह ऐसी ही मालूम पड़ती है।······वह मेरी बहती हुई नाव का लंगर होगी।" (पृ० २९१)

प्रश्न—'कर्मभूमि' में समस्याएँ ही समस्याएँ हैं जिन्होंने कथानक को पूर्णता प्रदान की है। कर्मभूमि के कथा-विकास का विवेचन करते हुए इसे स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—प्रेमचंदजी ने कथा-सामग्री का चयन मुख्यत: दो प्रकार से किया है। एक, जैसा सभी कथाकार करते हैं, निजी अनुभव और परिज्ञान के द्वारा। कथानक ही नहीं, पात्रों की गति-विधि और विचारधारा पर भी इस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। बात यह है कि उपन्यासकार का जिन व्यक्तियों से परिचय रहता है, अथवा प्रसंगवश कुछ काल के लिए हो जाता है, उनके चरित्र और विचारों में जो भी उल्लेखनीय विशेषता उसे मिलती है उसे वह सावधानी और सहानुभूति से सूत्र-रूप में ग्रहण कर लेता है। प्रेमचंद जी ने यही किया। प्राय: सभी नव-परिचित व्यक्ति उनकी रचनाओं में नाम-रूप बदल कर आये हैं।

विभिन्न सामयिक-पत्रों में प्रकाशित आकर्षक घटनाओं के तत्त्व अपनाना चयन का दूसरा प्रकार है। पत्र-पत्रिकाओं के संवादों या टिप्पणियों में प्रेमचंद जी ने कोई आकर्षक या रोचक बात पढ़ी नहीं कि उनके मस्तिष्क में वह चक्कर काटने लगती और शीघ्र ही परिष्कृत

होकर किसी सुंदर कहानी के रोचक कथानक का रूप धरकर सामने आ जाती। उन्हें घटनाओं का केवल सूत्र चाहिए था, उसका विकास करने की पर्याप्त क्षमता उनमें थी और इसी रचना-कुशलता के कारण एक ही संवाद-सूत्र को लेकर उन्होंने कभी-कभी विभिन्न दृष्टिकोणों से उसके सभी पहलुओं पर विचार करके कई कहानियाँ रची थीं। इसी प्रतिभा के बल पर प्रेमचंद जी सीमित सामग्री के सहारे थोड़े ही समय में रचनाओं क विशाल समूह सामने रखने में समर्थ हो सके।

कथा-सूत्र को पकड़ते ही प्रेमचंद जी तत्संबंधी महत्वपूर्ण समस्या सामने रख कर पाठक में उत्सुकता पैदा करते हैं। समस्या पाठक के लिए नवीन परिधान धरे रहती है और परिणाम जानने का कौतूहल बराबर उसके मन में बना रहता है। कथा इस समय बड़ी मस्तानी चाल से आगे बढ़ती है, मंत्रमुग्ध-सा पाठक-समुदाय लेखक के पीछे-पीछे चलने लगता है; चित्त एकाग्र है और मन कहानी में तल्लीन। कथा का यह विकास यहाँ तक होता है कि केवल परिणाम सुनना भर रह जाता है। पाठक उसके संबंध में अपनी योग्यता और संस्कार के अनुसार अनुमान करने लगते हैं। वर्णन की कुशलता भी उनको यह जानने के लिए व्यग्र कर देती है कि वस्तुत: परिणाम वही होता है या नहीं जो उन्होंने सोचा है; तभी लेखक एक झटका देकर कथा की गति रोक लेता है। झटके से पाठक चौंकते हैं, आँखें फाड़कर देखते हैं कि कथा की गति बदल गयी है और पूर्वानुमानित परिणाम-पथ छोड़कर भिन्न दशा में बड़ी तेजी से बढ़ रही है। लेखक इस समय उन्हें कुछ विचारने का अवसर नहीं देता, साथ आने का इशारा कर बड़ी शीघ्रता से अपने पात्रों के पीछे दौड़ता है। अमरकांत और सकीना के प्रेम की कहानी देखिए। सकीना की शादी की बात सुनकर बौखलाए हुए अमरकांत के साथ हम सलीम के यहाँ पहुँचते हैं; वहाँ से सकीना के घर पहुँचते हैं, और जब निश्चयपूर्वक प्रेम के निर्वाह का वह वचन देती है, तभी हम विश्राम करते हैं। परिणाम कल मालूम होगा; क्योंकि

सकीना ने फिर अमरकांत को बुलाया है। यह दिन पाठक को इसलिए दिया गया है कि वह अपनी कल्पना को स्वच्छन्दता प्रदान कर दे, जिससे वह परिणाम के संबंध में कुछ अनुमान कर सके। बड़ी व्यग्रता से पाठक इतना समय काटता है। परन्तु लेखक को उससे सहानुभूति नहीं; वह इतनी शीघ्रता से कहानी का अन्त बताने को तैयार नहीं। अभी तो अमरकांत के मित्र शांतिकुमार, सलीम, समरकांत, सुखदा सभी पीछे रह गये हैं। उन्हें भी साथ लेना है, बराबर आने का समय देना है। पाठक बड़ी व्यग्रता से इन लोगों का रास्ता देखने को विवश हो जाता है।

कला-विकास के लिये लेखक को सदैव नयी समस्याएँ सामने रखने की आवश्यकता नहीं होती। असमान मनोवृत्तियों वाले पात्रों के वाद-विवाद से ही कथा को आगे बढ़ाने का विषय उसे मिल जाता है। आवेश में व्यक्ति प्राय: शब्दों को संकुचित अभिधेयार्थ समझता है, वक्ता के मूल उद्देश्य तक नहीं पहुँचता और उसकी उक्ति का मनमाना अर्थ लगाकर ऐसा कांड कर बैठता है, जिसकी वक्ता को संभावना भी नहीं होती। समरकांत पुत्र को काम में लगाना चाहते हैं; इनके लिये उनके मुँह से निकलता है कि अपना और अपने बाल-बच्चों का खर्च चलाओ। अमरकांत उसका अर्थ निकालता है कि इन्हें पैसों का गर्व हो गया है, तथा सुखदा समझती है कि सभी धनी लोभी होते हैं। पश्चात, दोनों नया घर लेकर रहने लगते हैं। फलस्वरूप समरकांत के सामने नयी समस्या उपस्थित होती है।

कर्मभूमि में दो समस्याएँ साथ-साथ चलती हैं। एक का संबंध नगर से है, और दूसरी का गाँव से। नागरिक कथा का आरंभ एक पारिवारिक समस्या से होता है। अमरकांत को सार्वजनिक कार्यों से रुचि है, उसी के साथ रहकर हम नागरिक समस्याओं से परिचित होते हैं। पिता को पुत्र की बातें रुचती नहीं और एक दिन अमरकांत को घर छोड़ना पड़ता हैं। इस ठुकराये हुए युवक के प्रति हमारी सहानुभूति बढ़ती है। माया की ममता में पड़ कर पिता जब अपने पुत्र को

और पत्नी अपने पति को खो देती है, तब दोनों चेतते हैं। पति का स्वभाव समझने की चेष्टा करती हुई सुखदा अछूतों के मंदिर-प्रवेश की बात लेकर धर्म के ठेकेदारों से और बाद में अछूतों के घरों को लेकर सरकारी बोर्ड से युद्ध ठानती है। उसके जेल चले जाने पर पिता समरकांत मैदान में आते हैं। उनको लेखक ने सुखदा से पहले दो कारणों से नहीं आने दिया। एक तो यह कि नगर में आंदोलन का आरंभ होता है धर्म के उस प्रश्न को लेकर जो समरकांत के जीवन-मरण से परे उस लोक से उनका संबंध स्थापित करनेवाला है, और दूसरे, उनके संस्कार नयी रोशनी के नहीं हैं। उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे सहसा पूँजीपति-वर्ग की मनोवृत्ति छोड़कर सुधारक के रूप में सामने आ सकेंगे। पुत्र-पतोहू, कन्या, सबके जेल चले जाने पर तो उनके लिए कोई अन्य मार्ग रह ही नहीं जाता। अस्तु।

ग्राम्य आंदोलन से हमारा परिचय अमरकांत के वहाँ पहुँचने पर होता है। आरंभ में ग्रामीण समाज के उन दोषों से हम परिचित होते हैं जो उच्च वर्ग से उसे अलग किये हुए हैं। पश्चात् उसकी निर्धनता, कर और कर्ज संबंधी समस्याएँ सामने आती हैं, जिनका प्रत्यक्ष और परोक्ष संबंध सारे देश से है। निर्धन किसान लगान देने लायक नहीं है और छूट के लिए संसार से संघर्ष करता है। अमरकांत अकेला शायद इतना काम संभाल न सके, इसलिए स्वामी आत्मानंद को भी लेखक ने वहाँ पहुँचा दिया है और अमरकांत के जेल जाने पर सलीम उनके रिक्त स्थान की पूर्ति करने पहुँच जाता है।

इस प्रकार कथा-विकास के पाँच भाग लेखक ने किये हैं। प्रथम और तृतीय में नागरिक आंदोलन की कहानी है और द्वितीय तथा चतुर्थ में ग्राम्य की। पाँचवें भाग में दोनों कथाएँ मिल कर एक हो जाती हैं और लेखक एक परिच्छेद में नगर की कहानी कहता है तो दूसरे में ग्राम की। दोनों क्षेत्रों में सार्वजनिक आंदोलन के नेता भी मिल कर एक हो जाते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि यह मेल होता

है जेल में। यह संदेश, निश्चय ही, दूरदर्शिता से युक्त और उद्देश्य पूर्ण माना जा सकता है।

पारिवारिक जीवन की विषमता और उसका परिणाम इस उपन्यास की मुख्य समस्या है। पुरानी लीक पीटने वाला पिता और नयी रोशनी का शिक्षित पुत्र। एक धर्म के आडंबर का अंधानुयायी और दूसरा उसका शत्रु। एक धन के लिए जान देनेवाला कृपण और लोभी—उसकी प्राप्ति के लिये सभी कुछ करने को सदा प्रस्तुत महाजन, और दूसरा सिर्फ पेट भरने के लिए पैसों की चाह रखने वाला, उदार और निर्लोभी। फलस्वरूप पिता और पुत्र में जरा भी नहीं बनती। विवाह के पश्चात् इन असंयमी और 'युवती प्रकृति' के युवक का संबंध होता है विलासिनी 'युवक प्रकृति' की युवती से। जन्म से अमरकांत स्नेह से वंचित है, विमाता की डाँट-फटकार और पिता के निर्मम व्यवहार ने उसको प्रेम के लिए लालायित कर दिया है, वह किसी स्नेहमयी गोद में लेटकर विश्राम चाहता है। उधर, लाड़-प्यार से पली सुखदा बचपन से अपनी बात रखती और सब पर शासन करती है। पत्नी के कर्तव्य वह समझती है और उनके अनुसार व्यवहार करने को प्रस्तुत है, परंतु तभी जब पति की ओर से इसका प्रारंभ हो; वह स्वयं झुक नहीं सकती। अमर उसकी प्रकृति समझ नहीं पाता। फलतः शारीरिक संबंध बना रहने पर भी दोनों के मन नहीं मिलते। सुखदा के गर्भवती हो जाने पर अमर को उसके प्रति विशेष आकर्षण हो जाता है, परन्तु बच्चे के तीन-चार महीने के हो जाने पर स्थिति पुनः पूर्ववत् हो जाती है। सकीना इसी समय अमर के जीवन में प्रवेश करती है।

'गोदान' में खन्ना-परिवार की समस्या भी ऐसी ही है। अंतर केवल इतना है कि वहाँ मिसेज खन्ना तीन-चार बच्चों की माता हैं और इस बंधन के कारण वे इच्छा रखते हुए भी घर से अपना संबंध-विच्छेद स्वयं नहीं कर सकतीं। मिस्टर खन्ना की स्थिति भी अमरकांत से अधिक पुष्ट हैं। वे एक मिल के डाइरेक्टर हैं, दूसरी के मालिक हैं।

मनचाहा व्यवहार वे स्वच्छंद युवतियों से कर सकते हैं और मालती तो उनके हाथ का खिलौना ही बन जाती है। उनकी स्वेच्छाचारिता से मिसेज खन्ना इतनी दुखित नहीं हैं जितनी इस बात से कि पत्नी और पुत्र के प्रति अपने कर्तव्य को उन्होंने भुला दिया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'कर्मभूमि और 'गोदान' की पारिवारिक समस्या का घनिष्ठ संबंध है। अंतर केवल इतना है कि 'कर्मभूमि' की समस्या विवाह के तीन-चार वर्ष बाद की है, 'गोदान' की लगभग पंद्रह।

मुन्नी जैसी स्त्रियों की समस्या भी प्रायः समाज के सामने रहती है। असहाय, निर्धन और अनाथ हिन्दू युवतियों का धर्म लूटने वाले विधर्मियों की कमी नहीं है। हमारा समाज अपनी आँखों के सामने बहू-बेटियों की लाज लुटते देखता और फिर भी जीवित रहता है; परन्तु उन्हें पुनः अपने में मिलाने को किसी तरह प्रस्तुत नहीं। मुन्नी जैसा मनोबल तो इनमें होता नहीं—यद्यपि लेखक ने संकेत किया है कि इन स्त्रियों का इनके प्रति नागरिकों और परिवार वालों का क्या कर्तव्य होना चाहिए—तब इनकी जीवन-नैया इस अथाह और अगम समाज-सागर में, जिसमें भयंकर और शक्ति-शाली घातक जीव-जन्तु ही चारों ओर घात लगाये हैं, कैसे पार लगेगी ?

सामाजिक कार्य-कर्ताओं के सुधार-कार्य के प्रति परिवार के अन्य व्यक्तियों को असंतोष रहता है। समाज-सुधार का कार्यकर्ता की दृष्टि में जो भी महत्व हो, उसके सम्बन्धी उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं होते और इसे किसी तरह पसन्द नहीं कर सकते कि परिवार की चिन्ता छोड़कर 'सुधारक' केवल सामाजिक क्षेत्र में ही कार्य करे। अमरकांत के पारिवारिक जीवन में असन्तोष का कारण उसकी जन-सेवा-वृत्ति ही है, जिसका निश्चित लक्ष्य न होने और बीच में सकीना के आने-जाने पर क्रमिक विकास नहीं होता। अमरकांत और सुखदा उससे इसीलिए असन्तुष्ट है कि वह भोर से पाठशाला जाता, दिन भर नया रोग पालता—म्युनिसिपैलटी की मेम्बरी निभाता—और साँझ से

कांग्रेस में बैठता। ये सभी काम उसकी निगाह में और व्यर्थ के झंझट हैं।

समस्या यह है कि समाज और देश, दोनों को आज ऐसे सुधारकों और सेवकों की आवश्यकता है जो व्यक्तिगत हानि-लाभ के विचारों का त्याग करके सुधार-कार्य में अग्रसर हों। परन्तु ऐसा करने पर उनके सम्बन्धियों को व्यक्तिगत हानि-लाभ का विचार छोड़ने के लिए विवश नहीं किया जा सकता; वे स्वयं ऐसा करने को प्रस्तुत हो जायँ तब तो कहना ही क्या है, परन्तु इसके लिए उन्हें दबाना नितांत अनुचित और स्वार्थ है। देश-प्रेमी के हृदय में राष्ट्रीयता की जो भावना है वह उसके परिवार के सभी सदस्यों में कदाचित् नहीं होगी। स्वभावत: वे उसके कार्य का विरोध करेंगे और फलस्वरूप परिवार में अशांति होगी। यदि सुधारक की आर्थिक दशा 'कर्मभूमि' के लाला समरकांत की तरह अच्छी है, तब तो कम-से-कम उसे एक चिंता से छुटकारा मिल जाता है, परन्तु आर्थिक दशा अच्छी न होने पर संघर्ष तथा उसका परिणाम और भयंकर हो सकता है। इस संघर्ष का अंत तभी होता है जब सुधारक के निकटतम सम्बन्धी उसके कार्य में सहयोग दें। 'कर्मभूमि' में सुखदा और अमरकांत, दोनों अन्त में अमरकांत की तरह सार्वजनिक कार्य में भाग लेने लगते है। सार्वजनिक कार्य में भाग लेने वाले व्यक्ति के परिवार में शांति तभी हो सकती है जब अन्य संबंधी भी उसी का अनुकरण करके इस क्षेत्र में उतर आयें, अपने ऐश्वर्य का हँसते-हँसते त्याग करने को प्रस्तुत हो जायँ। 'कर्मभूमि' का अमरकांत अकेला जब इस क्षेत्र में प्रवेश करता है, तब पिता उसका विरोध करते हैं और पत्नी भी। धीरे-धीरे यह विरोध भयंकर रूप धारण कर लेता है। घर की शांति नष्ट हो जाती है, एक दूसरे से हँसने-बोलने को तरस जाते हैं। एक दिन अछूतों के मंदिर-प्रवेश का प्रश्न लेकर सुखदा मैदान में आ जाती है और अंत में समरकांत भी। इस तरह उद्देश्य की एकता हो जाने पर इन प्राणियों को कृष्ण-मंदिर में भी पर्याप्त सुख-संतोष मिलता है।

परिशिष्ट

प्रश्न---उपन्यासकार प्रेमचंद का जीवन परिचय देते हुए उनकी सराहनीय हिंदी-सेवा का परिचय दीजिए।

उत्तर—परिचय—बाबू प्रेमचंद जी का असली नाम धनपतराय था। आपका जन्म सन् १८८० में एक प्रतिष्ठित कायस्थ-कुल में हुआ था। आरंभ में इन्होंने उर्दू-फारसी की शिक्षा पायी। सन् १८९९ के लगभग मैट्रीकुलेशन पास किया और ये एक स्कूल में अध्यापक हो गये। उस समय इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और लगभग २०) मासिक ही इन्हें मिलते थे, परंतु इन्होंने किसी प्रकार बी० ए० पास कर लिया। इसके कुछ समय बाद राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित होकर इन्होंने नौकरी छोड़ दी।

हिन्दी के क्षेत्र में—उर्दू में सन् १९०१ के लगभग ही इन्होंने कहानियाँ लिखना शुरू कर दिया था। ५-६ वर्ष बाद ये उपन्यास भी लिखने लगे। अपने समय के ये उर्दू के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक थे और आपकी कहानियाँ उर्दू के सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्र 'जमाना' में आदर से स्थान पाती थीं। सन् १९१० के आस-पास से ये अपनी उर्दू कहानियों और उपन्यासों का रूपांतर हिंदी में करने-कराने लगे। यों इन्होंने हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। लगभग २५ वर्ष तक हिंदी में कहानियाँ और उपन्यास लिखकर इन्होंने अक्षय कीर्ति प्राप्त की। 'मर्यादा' और 'माधुरी' का सम्पादन भी इन्होंने कुछ समय तक किया। तत्पश्चात् सरस्वती प्रेस, बनारस की स्थापना करके 'हंस' (मासिक) और 'जागरण' (साप्ताहिक) का संचालन-सम्पादन किया। सिनेमा में भी ये कुछ दिन काम करने गये थे।

हिंदी-सेवा

कलापूर्ण मौलिक कहानियाँ—प्रेमचंदजी ने लगभग ३०० कहानियाँ लिखीं। उपन्यासों से अधिक इनकी कहानियों का प्रचार

है और उनमें उपन्यासों से अधिक मार्मिकता भी है जो हृदय की चुटकी लेती है। संपूर्ण जीवन की समस्त परिस्थितियों की मार्मिक विवेचना इनकी कहानियों में मिलती है और जिन कहानियों में हर्ष-शोक, सुख-दुख ममता-कर्तव्य आदि विपरीत भावों का द्वन्द है, वे उच्चकोटि की हैं।

श्रेष्ठ मौलिक उपन्यास—उपन्यास के क्षेत्र में भी इन्होंने मौलिक और आदर्श कार्य किया। हिन्दी के, वास्तव में, यही सर्वप्रथम साहित्यिक उपन्यास लेखक हैं। मौलिकता की दृष्टि से भी इनका बड़ा महत्व है। इनके उपन्यास हमारे साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं। सबसे महत्व-पूर्ण कार्य, इस प्रसंग में, उनका यह है कि तत्कालीन उपन्यासों और कहानियों के क्षेत्र में उन्होंने युगांतर उपस्थित किया। उनके पहले हिंदी में जो उपन्यास लिखे गये थे, उनका प्रचार बहुत हुआ था। यद्यपि उनसे पाठकों का मनोरंजन अवश्य होता था, तथापि उनमें जनता की रुचि उन्नत बनाने अथवा उसमें संस्कार करने की क्षमता नहीं थी। यह कार्य प्रेमचंद जी की कृतियों ने किया, कथा-कहानियों को सुन्दर साहित्यिक रूप देकर जनता की रुचि को इन्होंने उन्नत और परिष्कृत किया।

अतः प्रेमचन्द ही हिंदी के प्रथम कहानी और उपन्यास लेखक है, जिनकी साहित्यिक और मौलिक कृतियों का उर्दू, मराठी, गुजराती, जापानी, बँगला, अँगरेजी आदि भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। अब तक हमने इन भाषाओं की कहानियों और उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद करके अपना मनोरंजन किया था। कह सकते हैं कि प्रेमचंद जी ने इस ऋण को अदा करने की ओर पहला कदम बढ़ाया था।

मणि-कांचन-संयोग—प्रेमचंद जी के प्रायः सभी उपन्यासों, और अधिकांश कहानियों में, पाठकों के लिए कुछ न कुछ उपदेशात्मक संदेश अवश्य है और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक, प्रायः सभी कुरीतियों की उन्होंने आलोचना भी की है। इसके लिए उन्होंने ऐसे मीठे ढंग को अपनाया कि उससे पाठकों का मनोरंजन

तो होती ही है, किसी प्रकार की कटुता का अनुभव नहीं होता। इस प्रकार उनकी रचनाओं में 'शिवं सुंदरं' का मणि-कांचन संयोग देखने में आता है।

मनोवैज्ञानिक चित्र—दूसरी बात इनकी कृतियों के सम्बन्ध में यह भी कही जा सकती है कि वे 'मनुष्य जीवन की साधारण से साधारण घटना को लेकर उसका निष्कर्ष निकालते समय मनुष्य-हृदय के गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों को मनोविज्ञान के नियमों के ढंग पर ऐसा सजा कर धर देते हैं कि देखते ही बनता है।' दूसरे शब्दों में 'मनुष्य जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूति का मनोवैज्ञानिक चित्र इन्होंने खींचा है।

चरित्र-चित्रण की स्वतन्त्रता—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी हिंदी के लेखकों में इनका विशेष स्थान है। इनके सब पात्र स्वच्छन्द जीवित नर-नारी हैं। जान पड़ता है कि सबको उन्होंने बोलने-चलने-फिरने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी है और जो वे कहते हैं उसी का चित्र ये खींचते जाते हैं।

यथार्थ और आदर्श का समन्वय—उनकी रचनाओं की एक और विशेषता है। इन्होंने न तो 'उग्र' जी की तरह यथार्थ के नाम पर सामाजिक नग्नचित्र खींचे हैं और न आदर्श के पीछे पड़कर वे उपदेशक ही बन गये हैं। एक निपुण चित्रकार की तरह उन्होंने यथार्थ का उतना ही चित्रण किया है जितना विषय को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है और कुशल कलाकार की तरह आदर्श की ओर उतना ही संकेत किया है जितना सहृदय समाज के लिये उपयोगी है।

जनता के साहित्यकार—अंतिम बात यह है कि प्रेमचंद जी जनता के साहित्यकार हैं। उनके प्रधान उपन्यासों और अधिकांश कहानियों का विषय उन दीन-हीन, निर्धन, निरीह कृषकों की ग्राम-समस्या है जिसका संबंध समाज और राजनीति, दोनों से है। उन्होंने पूँजीपतियों का गुणगान करके इन दीन-दुखियों को अपनाया है। इससे हमें उनकी विशाल हृदयता का पता हो सकता है। जिस दिन हमारे किसान शिक्षित होंगे उसी दिन प्रेमचंदजी का वास्तविक मूल्य मालूम होगा, तभी वास्तव में उनका सम्मान होगा, क्योंकि उन्हें प्रेमचंदजी की कृतियों में वह चीज मिलेगी

जो हिंदू-समाज को तुलसीकृत रामायण में मिलती है।

स्वागत-सम्मान—प्रेमचंद की रचनाओं का सारे भारत में प्रचार हुआ; जनता ने उनका आदर से स्वागत किया। हमारे साहित्यिक भी उनका हृदय से सम्मान करते हैं। हिंदी की प्रमुख साहित्यिक संस्थाओं ने उन्हें अपना सभापति तो नहीं बनाया और न उनकी रचनाओं को पुरस्कृत ही किया, फिर भी सभी हिंदी-भाषियों के हृदय में प्रेमचंद जी ने घर कर लिया है और प्रतिदिन उनकी रचनाओं का प्रचार बढ़ता जाता है। उनके 'कर्मभूमि' नामक उपन्यास पर हिंदुस्तानी एकेडमी से ५००) का पुरस्कार मिला था। उनके मुख्य ग्रंथ ये हैं—

प्रसिद्ध उपन्यास—'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'वरदान', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान'।

कहानी-संग्रह—प्रेम-द्वादशी', 'प्रेम-पूर्णिमा', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-प्रसून', 'नवनिधि', 'सप्त-सरोज', मानसरोवर' (आठ भाग)।

नाटक—'कर्बला', 'संग्राम', 'प्रेम की वेदी'।

निबंध-संग्रह—'कुछ विचार'।

प्रेमचंद के विषय के संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। कारण, उन्होंने केवल कहानियाँ और उपन्यास ही अधिक लिखे हैं। 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हंस' और 'जागरण' के सम्पादक होकर उन्होंने जो सम्पादकीय नोट और निबंध लिखे थे उनका विषय प्राय: गम्भीर है। उनके उपन्यासों और कहानियों में भी अनेक गम्भीर स्थल हैं। अत: शैली में विशेष अन्तर नहीं है।

प्रश्न—प्रेमचंद जी की भाषा-शैली पर अपने विचार लिखिए।

उत्तर-भाषा—उर्दू के जो लेखक हिन्दी में आते थे, प्राय: उनकी भाषा में एक दोष यह रहता था कि वे अपने साथ उर्दू भाषापन ले आते थे जो हिंदी की प्रकृति से मेल न खाने के कारण इसमें मिलता नहीं, खटकता

रहता था। प्रेमचंद जी ने सन् १९१० के आस-पास जब हिंदी में लिखना शुरू किया तब उर्दू की उन्हीं विशेषताओं को अपनाया जो हिंदी में घुल-मिल सकती थीं, साथ-साथ वे इसकी प्रकृति का भी बराबर ध्यान रखते रहे। फल यह हुआ कि कथा-साहित्य के निर्माताओं में अनुवादों की अधिकता के कारण भाषा-विषयक जो उपेक्षा का भाव आ गया था, प्रेमचंद जी उसका संस्कार कर सके और जनता के सामने भाषा का साहित्यिक तथा परिमार्जित रूप भी रख सके जिसको अपनी रुचि, उद्देश्यादर्श और संस्कार के कारण थोड़ा-बहुत परिवर्तित करके उनके परवर्ती कलाकारों ने संघर्ष अपना लिया।

'गोदान' की भाषा सीधी-सादी और प्रवाहपूर्ण है। सजाने-सँवारने का प्रयासपूर्ण प्रयत्न न किये जाने के कारण उसमें जलधारा-सा, विषय-स्थिति के धरातल के उपयुक्त, प्रवाह है। दैनिक जीवन में पारस्परिक संलाप के लिए भाषा पर जिस प्रकार नियंत्रण रखने की आवश्यकता नहीं समझी जाती, उसी प्रकार प्रेमचंद जी ने भी अपने पात्रों को रुचि, संस्कार और योग्यता के अनुसार स्वच्छंद भाषा का प्रयोग करने की स्वतंत्रता दे रक्खी थी।

भाषा मनोभावों की व्यंजना का साधन है। रुचि और संस्कार का प्रभाव जिस प्रकार व्यक्ति के विचारों पर पड़ता है, उसी प्रकार भाषा पर भी। उपन्यास के सभी पात्र प्रायः एक ही संस्कार या आदर्श के नहीं होते। इस लिए सबकी भाषा भी समान नहीं होगी। इस भिन्नता का मूल कारण वातावरण की वह असमानता है जिसमें विभिन्न पात्र जन्मे और पले हैं। कारण, व्यक्ति और भाषा की प्रकृति में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रेमचंद के सभी पात्रों को स्थूल रूप से हम दो वर्गों में रख सकते हैं—(१) ग्रामीण (२) नागरिक। ग्रामीण पात्रों में सबों की भाषा मिलती-जुलती है। 'गोदान' में तो कोई मुसलमान ग्रामीण पात्र न होने से उसकी भाषा में भिन्नता का प्रश्न ही नहीं उठता; अन्य उपन्यासों में भी जहाँ हिन्दू और मुसलमान, दोनों बसते

हैं, वहाँ प्राय: एक ही भाषा बोली जाती है। अंतर केवल इतना है कि हिन्दुओं की भाषा में संस्कृत शब्दों के तत्सम रूप अधिक मिलते हैं और मुसलमानों में अरबी-फारसी के। 'प्रेमाश्रम' के ग्रामीणों की भाषा में यह बात देखी जा सकती है।

प्रेमचंद जी के इन उपन्यासों के ग्रामीण हिंदू पात्र साधारणत: दो वर्गों में रखे जा सकते हैं—(१) द्विजाति-वर्ग जिसमें ब्राह्मण-ठाकुर मुख्य हैं; और दूसरे शूद्र, जिसमें किसान हैं। प्रथम वर्ग वालों की भाषा की विशेषता यह है कि उसमें कभी-कभी संस्कृत के दो-चार व्यावहारिक तत्सम शब्दों का प्रयोग भी मिल जाता है। 'गोदान' में पंडित दातादीन की भाषा में यह बात ध्यान देने की है।

नागरिक पात्रों में हिन्दू-मुसलमान दोनों हैं और दोनों की भाषा भिन्न है। मुसलमान पात्र तो अरबी-फारसी-प्रधान भाषा में बात-चीत करते ही हैं; हिन्दू पात्रों को भी जब उनसे बोलना पड़ता है तब ये अपनी भाषा की शुद्धता का बंधन ढीला कर देते हैं। बात यह है कि विचार-विनिमय करते समय हम अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए प्राय: ऐसे शब्द चुनते हैं जिन्हें सुननेवाला सरलता से समझ ले। इसी तथ्य के अनुसार मुसलमानों से बात करते समय हिंदू पात्र संस्कृत के लोकप्रिय शब्दों के स्थान पर कभी-कभी अरबी-फारसी के तत्सम शब्द चुन लेते हैं। प्रेमचंद जी के प्रारम्भिक उपन्यासों में यह बात दिखायी देती है, 'गोदान' में नहीं। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' आदि उपन्यासों में मुसलमान पात्र जो भाषा बोलते हैं उससे हिंदी वालों को कभी संतोष नहीं रहा; उसका बराबर विरोध ही किया गया। प्रेमचंद जी का उद्देश्य ऐसी भाषा लिखने से केवल इतना था कि व्यवहार की स्वाभाविकता बनी रहे, परन्तु हिंदी के आलोचकों का विरोध होने पर उन्होंने मुसलमान पात्रों की भाषा में स्पष्ट परिवर्तन कर दिया। नीचे से अवतरण देखने से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

१—अब्दुललतीफ—जनाब, हमारे कौम की कुछ न कहिए।

खुदगरज, खुदफरोश, खुदमतलब, कजफहम, कजरौ, कजवी जो कहिए थोड़ा है। बड़ों-बड़ों को देखिए, रँगे हुए सियार हैं, रियाका जामा पहने हुए। आप की जात मस्दरे बरकात है। ऐसा मालूम होता है कि खुदा-ताला ने मलायक में से इन्तखाब करके आपको इस खुशनसीब कौम पर नाजिल किया है--सेवासदन, पृष्ठ १९४।

२—मेरी यह इल्तजा आपको कबूल करनी होगी। खुदा ने आपको यह दर्दमंद दिल अता किया हैं। क्यों नहीं, आप लाला जटाशंकर मरहूम के खलक हैं जिनकी गरीब परवरी से सारा शहर मालामाल होता था। यतीम आपको दुआएँ देंगे और अंजुमन हमेशा आपकी मसनून रहेगी। × × ×। दुआ कीजिये कि खुदा मुझे भी केनाअत की दौलत अता करे और मैं भी आपकी सोहबत से फैल उठाऊँ- प्रेमाश्रम, पृष्ठ ३५२।

३—ताहिर अली—जानता हूँ, इतना जानता हूँ, शराफत से बईद है; लेकिन मैं शरीफ नहीं हूँ, पागल हूँ, दीवाना हूँ, शराफत आँसू बनकर आँखों से बह गयी। जिसके बच्चे गलियों में, दूकान पर भीख माँगते हों, जिसकी बीबी पड़ोसियों का आटा पीसकर अपना गुजर करे, जिसकी कोई खबर लेनेवाला न हो, जिसके रहने का घर न हो, जिसके पहनने का कपड़ा न हो, वह शरीफ नहीं हो सकता—रंग-भूमि (दूसरा भाग), पृष्ठ ४२५।

४—मिर्जा खुर्शेद—और मैं कहता हूँ कि यह महज रोजी का सवाल है। हाँ, यह सवाल सभी आदमियों के लिए एक-सा नहीं है। मजदूर के लिए वह महज आटे-दाल और एक फूस की झोपड़ी का सवाल है। एक वकील के लिए वह एक कार और बँगले और खिदमतगारों का सवाल है। आदमी महज रोटी नहीं चाहता और भी बहुत-सी चीजें चाहता है। अगर औरतों के सामने भी वह प्रश्न तरह-तरह की सूरतों में आता है तो उनका क्या कुसूर है—गोदान, पृष्ठ ४४२।

पहले दो अवतरण क्लिष्ट भाषा के हैं, जिन्हें साधारण पाठक अच्छी तरह समझ नहीं सकता। अंतिम दो परिच्छेद अपेक्षाकृत सरल हैं और उनमें प्रयुक्त 'शराफत से बईद' जैसे प्रयोग भाषा को हिंदू-पात्रों की भाषा से अलग कर देते हैं।

मुसलमान पात्रों से बात करते समय संस्कृत की तत्समता के प्रेमी हिंदू-पात्र भी उन्हीं की सी मिलती-जुलती भाषा में उत्तर देते हैं। केवल दो अवतरण देखिए—

१—विट्ठलदास अब्दुलवफा से कहते हैं—मैं इस मेहरबानी के लिए आपका मशकूर हूँ। लेकिन कमेटी ने यह फैसला कर दिया है कि यहाँ इस किस्म का कोई काम न कराया जाय। इस वजह से मजबूर हूँ—सेवासदन, पृष्ठ १९४।

२—शांतिकुमार सलीम से कहते हैं—मेरे ख्यालात तुम्हें मालूम हैं। यह किराए की तालीम हमारे कैरेक्टर को तबाह किये डालती है। हमने तालीम को भी व्यापार बना लिया है। व्यापार में ज्यादा पूँजी लगाओ, ज्यादा नफा होगा। तालीम में भी ज्यादा खर्च करो, ज्यादा ओहदा पाओगे—कर्मभूमि पृष्ठ ९९।

'गोदान' में हिंदू पात्र मुसलमानों से बात करते समय बोलते तो यही भाषा हैं परंतु अब वे कभी-कभी संस्कृत के तत्सम शब्द भी निसंकोच कह जाते हैं। डाक्टर मेहता ने मिर्जा खुर्शेद से हँसकर कहा—आपने इस प्रश्न पर ठंडे दिल से गौर नहीं किया। रोजी के लिए और बहुत से जरिए हैं। ऐश की भूख रोटियों से नहीं जाती। उसके लिये दुनिया के अच्छे से अच्छे पदार्थ चाहिएँ। जब तक समाज की व्यवस्था ऊपर से नीचे तक बदल न ड़ाली जाय, इस तरह की मंडली से कोई फायदा न होगा—गोदान, पृष्ठ ४४१।

सारांश यह कि 'गोदान' की रचना के समय तक प्रेमचंद जी का मुसलमान पात्रों की भाषा-संबंधी मत बदल चुका था और यद्यपि मिर्जा खुर्शेद द्वारा 'मुआहदा मुजाहिम, मकरूज' जैसे दो-चार तत्सम शब्द

उन्होंने प्रयुक्त कराये हैं, तथापि उनकी भाषा ने हठधर्मीपन निश्चय ही छोड़ दिया है। प्रेमचंद जी के सभी उपन्यासों का नामकरण शुद्ध हिंदी शब्दों को लेकर किया गया है; केवल एक उपन्यास का नाम 'ग़बन' इसलिए रखा गया है कि इस रचना के विषय की ओर इंगित करने वाला दूसरा उपयुक्त शब्द कदाचित् नहीं हो सकता था। विषय की अनुरूपता की रक्षा के लिए उन्होंने भाषा की शुद्धता का ध्यान नहीं रखा। प्रेमचंद जी की यही मनोवृत्ति सर्वत्र पायी जाती है और सभी उपन्यासों की भाषा में समानता न होने का कारण भी कथावस्तु की भिन्नता ही है।

'गोदान' का अधिकांश भाग ग्रामीण जीवन के चित्रण ने ले लिया है और उसका नायक होरी आदि से अंत तक ग्रामीणों से ही चारों तरफ घिरा होने के कारण कभी शहर के दर्शन तक नहीं करता। इसलिए 'गोदान' की भाषा में ठेठ ग्रामीण अर्द्धतत्सम और तद्भव शब्दों की ही प्रधानता है। इस उपन्यास में प्रयुक्त कुछ प्रचलित घरेलू और ठेठ शब्द ये हैं—उटंगी, घामड़, रजा, गारा, हेठी, महावट, घटाटोप, मनुहार, अदरावन, बौड़ा, चोओं, गड़ाप, सुरखुरू, नाकिस, ढई, रहैया, कुत्सा, धाड़ेंगे, पैंठ, घिरै, मनावन, उड़ंकू, नफरी, चँगेरी, जुगाड़, अड़ौन, हून, दौंगड़ा, तरके, टिकौना, कोल्हाड़, हकनाहक, नादिहेंदी, पुछत्तर, झक्कड़ (झक्की), गडमड और लडंतिए। हिंदी-अँगरेजी के इस प्रकार के बहुत से तद्भव शब्दों का प्रयोग सर्वत्र मिलता है—छिच्छा (शिक्षा), हरमुनियाँ, बिलम (विलंब), साखी (साक्षी), जरीबाना, सराप, पुलुस (पुलिस), जैजात (जायदाद), इसटाम (स्टांप) और कालिस (कालेज)। 'गोदान' में प्रेमचंद जी ने अपने ग्रामीण पात्रों द्वारा कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग कराया है जो शहर के पढ़े-लिखे बाबुओं को और साहित्य के किताबी छात्रों को खटकेंगे। ऐसे शब्द दो प्रकार के हैं। एक वे जिनका अर्थ पढ़ते ही स्पष्ट हो जाता है, जैसे—अनघड़, पुछत्तर, पिछलगुआ,

तुनुकमिजाज। दूसरे शब्द ऐसे हैं जो साधारण प्रसंग के साथ ही समझ में आते हैं, जैसे--उड़नघाइयाँ, बुड़बकपन, लतिहाउज, अनीली। अँगरेजी शब्दों का प्रयोग दोनों रूप में हुआ है--शिक्षित-अशिक्षित पात्रों द्वारा वे व्यवहृत हुए हैं और लेखक ने स्वयं भी उन्हें अपनाया है। शिक्षित पात्रों की बातचीत में अँगरेजी के कुछ शब्द प्रयुक्त होते हैं। इसलिए प्रेमचंद जी ने इनका प्रयोग आरम्भ से ही किया है। यथा अमृतराय 'स्पीच' सुनने में तल्लीन थे। × × रटी हुई 'स्पीच' है (प्रतिज्ञा, पृ० १,। पुलिस के 'चार्ज' में छोड़ दिया (कर्मभूमि, पृ० ३५)। 'वलगर' शब्द ही इस आशय को व्यक्त कर सकता है (रंगभूमि, पृ० ५०४)। यों इनका प्रयोग स्वाभाविकता की रक्षा करने के लिए ही हुआ है। हाँ, लेखक ने जिन अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है, उनमें से अधिकांश से वह छुटकारा पा सकता था, परन्तु उसने इसकी विशेष चिन्ता न की। कारण, पढ़े-लिखे पात्रों के कार्य-विवरण की व्याख्या करते समय ही उसने प्राय: इन शब्दों को अपनाया है। शिक्षित पात्रों द्वारा प्रयुक्त कुछ अँग्रेजी शब्द ये हैं--कनवेसर, ब्लेडी, नेशनलिस्ट, मेटीरियालिस्ट, चांस, गेम, फेयर, पोजीशन आदि।

कुछ अँगरेजी शब्द पारिभाषिक हैं जिनका प्रयोग अर्थ की संपूर्णता के लिए किया गया है; यथा--अपील, चीफ सेक्रेट्री, प्रोग्राम, वोटिंग एजेंट, काउंसिल, फीस, नोट, कंपनी, डाइरेक्टर, मेडल, एलेक्शन, पालिसी, फार्म, हाल, पबलिक, मिनिस्टर, कनवेसर, परसेंट, शुगर, इंश्योरेंस, फ्री पास, हाफ टाइम, वीमेंस लीग, डेपुटेशन, स्पेकुलेशन, डिमाक्रेसी, मैंनिफेस्टो, विजिट, प्रेक्टिस, ग्रेड, एकेडमी, कैबिनेट, ट्रेजेडी, बिजनेस, बैंकर, थ्री चियर्स, बजट, ड्यूटी, रेकार्ड, इंचार्ज आदि।

इन सब तथा ऐसे ही अनेक अँगरेजी शब्दों का प्रयोग बराबर करते रहने पर भी प्रेमचंद जी ने हिंदी की प्रकृति का पूरा-पूरा ध्यान रखा है और विदेशी शब्दों के बहुवचन हिंदी-व्याकरण के अनुसार ही

बनाये हैं। यहाँ कुछ उदाहरण संकलित हैं—मिनिस्टरों, कौंसिलों, स्टाकों, फिलास्फरों, कम्युनिस्टों, थ्योरियों, नेशनलिस्टों, एजेंटों, म्युनिसिपैल्टियों, बोर्डों, बैंकरों आदि। 'अल्टिमेटम' शब्द का प्रयोग 'गोदान' में चार-पाँच बार किया गया है और ध्यान देने की बात है कि प्राय: सर्वत्र लेखक ने ही किया है। अँग्रेजी के 'टाउट शब्द के लिए लेखक को शायद कोई शब्द नहीं मिला; इसी से इसी का प्रयोग उसने 'गोदान' में (२६०) दो-तीन बार किया है।

विदेशी शब्दों के प्रयोग के संबंध में हमें सिर्फ एक बात कहनी है। अँगरेजी के जो छोटे-मोटे शब्द व्यावहारिक भाषा में घुल-मिल गये हैं। उनका प्रयोग चाहे लेखक ने स्वयं किया हो, चाहे शिक्षित-अशिक्षित पात्रों द्वारा कराया हो, स्वाभाविकता को दृष्टि से भाषा की प्रकृति के अनुरूप ही समझा जायगा। परंतु प्रेमचंद जी ने स्थिति, घटना अथवा कथा-प्रगति की विवेचना करते समय अँगरेजी या अरबी-फारसी के जिन अप्रचलित या अनावश्यक शब्दों का प्रयोग किया है, उनका समर्थन भाषा-नीति अथवा अकृत्रिमता की दुहाई देकर कदापि नहीं किया जा सकता। ऐसे शब्द हिंदी में न खप सके हैं और न खपेंगे। हाँ, यह सम्भव है कि अपने सीमित क्षेत्र में कुछ दिन विचरण करने के पश्चात अर्थ में आज का अपेक्षा अधिक विशेषता लाकर अपनी सीमा, शिक्षा की प्रगति होने पर, अधिक बढ़ा लें। अस्तु।

प्रेमचंद जी के पास सहयोगी शब्दों का अक्षय भंडार है। प्रारंभिक उपन्यासों में तो इनका प्रयोग साधारण रीति से ही किया गया है, परंतु 'गोदान' में इनकी भरमार है और वस्तुत: इन्होंने भाषा की स्वाभाविकता के साथ-साथ उसकी व्यंजन-शक्ति को विशेष क्षमता प्रदान की है। ये सहयोगी शब्द दो प्रकार के हैं—(१) ठेठ शब्द (२) साहित्यिक शब्द। प्रथम से आशय उन सहयोगी शब्दों से हैं जो ग्रामीण जनता के साथ-साथ नागरिक जन-साधारण में प्रचलित हैं। ऐसे कुछ सहयोगी शब्द, जो 'गोदान' में प्रयुक्त हुए हैं, यहाँ संकलित हैं—दाँत-घाव, बाँट

बखरा, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना घूस-घास, बैल-बधिए, चिरौरी-बिनती, गहने-गाठे, जाँच-तहकीकात, ताक-झाँक, भोज-पात, हिस्से-बखरे, कर-करा, बूढ़े-सूखे, पोत-लगान, संभलना-सहेजना, सर-संदेश, पोथी-पत्रा, कथा-भागवत, कुल-परतिष्ठा, दवा-दारू, झाड़-फूँक, डूब-धँस, डाँड-बाँध, मूड़न-छेदन, जगह-जमीन, झगड़े-टंटे, धर-पकड़, धूल-धक्कड़, खेत-खलिहान, मान-मनौवल, करज-कवाम, सौक-सिंगार, ताने-मेहने, गाली-गलौज, थुक्का-फजीहत, बीच-बचाव; सेंत-मेत, अलल्ले-तलल्ले, नालिस-फरियाद, लाग-डाँट, माँग-चोटी, फाँस-फूँस, कार-परोज, बरतन-भाँडे, बाजा-गाजा, पेड़-पालो, ठीक-ठाक, दान-दहेज, बूढ़ा-ठेला, जमीन-जैजात, लिलाम-तिलाम, मोटा-महीन, खुसी-खुर्रमी, घुड़का-डाँटा, हास-विलास, प्रेम-श्रेम, चना-चबेना, हाल-हवाल, रसद-चारा, नजर नियाज आदि। इसी वर्ग के कुछ सहयोगी शब्द 'गोदान' में ऐसे भी मिलते हैं जो उक्त शब्दों की तरह विशेष प्रचलित नहीं हैं, जैसे—लंबे-तंगे, इमा-सुमा, दम-खम, हैंस-वैंस, जेर-बार। इनमें से एकाध का प्रयोग प्रेमचंद जी ने अन्य उपन्यासों में भी निःसंकोच किया है।

दूसरे प्रकार के सहयोगी शब्द शिक्षित नागरिक पात्रों में ही प्रायः प्रचलित हैं जिनका प्रयोग साधारण जनता तद्भव रूप में कभी-कभी कर लेती है। ऐसे कुछ शब्द ये हैं—घात-प्रतिघात, मान-मर्यादा, सेवा-सत्कार। सावधानी से ऐसे शब्दों का संकलन किया जाय तो एक छोटा मोटा कोश तैयार किया जा सकता है।

'गोदान' में प्रेमचंदजी ने कुछ शब्दों का विशेषतासूचक प्रयोग किया है। दो-चार उदाहरण देखिए—

१—रात 'भीग' गयी।

२—'बारे' कुशल हुई कि भादों में वर्षा हो गयी—१५१।

३—क्या 'निराला' (निहार मुँह) ही पानी पियोगे।

४—मैं 'कुपद' (अनुचित) तो नहीं कह रहा हूँ।

५—'भाई' शब्द का स्त्री के लिए स्वाभाविक प्रयोग भी एक स्थान

पर 'गोदान' में मिलता है। होरी अपनी स्त्री की नासमझी से खीझकर कहता है--जो बात नहीं समझती उसमें टाँग क्यों अड़ाती है 'भाई' ! पृ० १।

'गोदान' की भाषा कई दृष्टियों से विशेष महत्व की है। परंतु उसमें दो बातें खटकती भी हैं—

१—कहीं-कहीं 'और' का अनावश्यक प्रयोग किया गया है; जैसे—धैर्य और प्यार और त्याग और शील और प्रेम (३६६)। दया और श्रद्धा और अनुराग, तालाबों और पोखरों और गढ़इयों, जीवन और दया और धैर्य, मक्का और ज्वार और कोदों।

२—विभिन्न भाषाओं के दो शब्दों को एक पास रखना जरा खटकने वाली बात है। 'हिन्दुस्तानी एकेडमी' के एक भाषण में इसका बड़ा मजाक उड़ाया गया था। प्रेमचंद जी ने भी कहीं-कहीं ऐसे जोड़े बना दिये हैं, जैसे–विशेष-दिलचस्पी [१२१] तमाशा-समाप्त [१२२] जिंदगी-इंश्योर्ड [१४५]।

सारांश यह कि 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' की भाषा में बड़ा अन्तर है। 'प्रेमाश्रम' की रचना के समय हिंदी वाले संस्कृत की और उर्दू वाले अरबी-फारसी की तत्समता-प्रियता के लिए प्रयत्नशील थे। 'गोदान' के समय 'हिंदुस्तानी' नाम से प्रचलित भाषा लिखने का आंदोलन जोरों पर था। इसलिए पढ़े-लिखों की भाषा भी प्रायः एक सी है, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, स्त्री हों या पुरुष, साहित्यिक हों या असाहित्यिक।

शैली—प्रेमचंद जी ने उपन्यास और कहानियाँ ही मुख्यतः लिखी हैं। साहित्य के इन अंगों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है तथा जीवन के सत्य व्यापारों और कार्यों से इनका संबंध स्थापित करके इन्हें उपयोगी बनाने के लिए लेखक में विशेष कौशल अपेक्षित है। अतः उपयोगिता का स्थान गौण समझना चाहिए। कथाकार को इस ओर भी ध्यान रखने की आवश्यकता कदाचित् इसलिए है कि जो समय मनोरंजन में व्यतीत होता है, वह कुछ काम की बात भी जता जाय। मनुष्य के व्यस्त और

छोटे जीवन में आज ऐसे सार्थक मनोरंजन की आवश्यकता पहले से बढ़ गयी है।

रचना को मनोरंजक बनाने का प्रधान साधन लेखक की शैली है। अत्यंत प्रिय घटना जिसे सुनने को सभी उत्सुक हैं, यदि अरोचक ढंग से कही जाय तो श्रोताओं को सुनने में आनंद नहीं देती। इसी तरह साधारण से साधारण अरुचिकर विषय ऐसे आकर्षक ढंग से लिखा जा सकता है कि अनिच्छुक व्यक्ति भी क्षण भर रुककर पढ़ने को लालायित्त हो जाय।

प्रेमचंद जी की रचना-शैली की यही विशेषता है। आरम्भ में वे उर्दू में लिखते थे और वहाँ उनकी गिनती प्रसिद्ध लेखकों में थी। हिंदी में आने पर उर्दू शैली का उनकी लेखन-शैली पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। परंतु आरंभ से ही उनकी प्रवृत्ति हिंदी-शैली की विशेषतायें अपनाने की ओर रही और शीघ्र ही इस प्रयत्न में वे पर्याप्त सफलता प्राप्त कर सके। फलतः हिंदी की अभिव्यंजन शैली के विकास में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योग दिया। उनकी शैली में सर्वत्र एक प्रकार की सरलता है जिसमें भावावेश के कारण सजीवता और बल आ जाता है। जहां कोमल भावों की व्यंजना है, वहाँ भाषा मधुर और कोमल हो गयी है; जहाँ क्रोध की उग्रता दिखायी गयी है वहाँ शैली भी उग्र और ओजपूर्ण हो गयी है; जहाँ तिरस्कार, अवहेलना अथवा अपमान संबंधी भाव स्पष्ट किये गये हैं, वहाँ शब्दों का चयन इस ढंग का मिलता है जिससे घृणा का भाव स्पष्ट हो जाय। नीचे के उदाहरण देखिये--

रानी जाह्नवी के हृदय में सोफिया के प्रति स्नेह का संचार होता है, तब वह कहती है--बेटी, तुम देवी हो, मेरी बुद्धि पर परदा पड़ गया था, मैंने तुम्हें पहचाना न था। मुझे सब मालूम है बेटी! सब सुन चुकी हूँ। तुम्हारी आत्मा इतनी पवित्र है, यह मुझे मालूम न था। आह! अगर पहले से जानती--रंगभूमि, पृ० ७४२।

ऐसा ही स्नेह बुढ़िया पठानिन के हृदय में संचारित होता है और कृतज्ञ होकर वह कहती है—मेरा बच्चा इस बुढ़िया के लिए इतना हैरान हो रहा है। इतनी दूर से दौड़ा आया। पढ़ने जाते हो न बेटा, अल्लाह तुम्हें बड़ा दर्जा दे—कर्मभूमि, पृ० ४९।

परंतु जब इन्हीं दोनों स्त्रियों को कारणवश क्रोध आ जाता है तब शैली ओजपूर्ण हो जाती है। उसी सोफिया से रानी जाह्नवी कहती है—मैं राजपूतनी हूँ, मरना भी जानती हूँ और मारना भी जानती हूँ। इसके पहले कि मैं तुम्हें विनय से पत्र-व्यवहार करते देखूँ, तुम्हारा गला घोट दूँगी—रंगभूमि, पृ० २५८।

बुढ़िया पठानिन भी क्रोध में आकर उसी अमरकांत से आग भरे शब्दों में कहती है—होश में आ छोकरे! बस, अब मुँह न खोलना, चुपचाप चला जा, नहीं आँखें निकाल लूँगी। तू है किस घमंड में? खबरदार, जो कभी इधर का रुख किया। मुँह में कालिख लगा कर चला जा—कर्मभूमि, पृ० १७५।

गोबर के साथ अनुचित संबंध स्थापित करने के पश्चात् भोला अहीर की लड़की झुनिया जब होरी के घर आती है तब यह भी अपनी स्त्री धनिया से कठोर स्वर में कहता है—मैं यह कुछ नहीं जानता। हाथ पकड़ कर घसीट लाऊँगा और गाँव के बाहर कर दूँगा। बात तो एक दिन खुलनी ही है, फिर आज ही क्यों न खुल जाय। वह मेरे घर आयी क्यों? × × × जाय जहाँ उसके सगे हों। हमारे घर में उसका क्या रखा है? × × × हमें क्या करना है, मरे या जिये। जहाँ चाहे जाय—गोदान, पृ० १९९-२००।

परंतु दूसरे ही क्षण द्वार खुलते और होरी को आते देखकर झुनिया जब भय से काँपती हुई उठी और होरी के पैरों पर गिर पड़ी, तब उसने झुक कर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए प्यार भरे स्वर में कहा—डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसी तू भोला की बेटी है वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम

जीते हैं किसी बात की चिंता मत कर। हमारे रहते तुझे कोई तिरछी आँखो से न देख सकेगा—गोदान, पृ० २०१।

इसी प्रकार 'जहाँ भावों का उद्‌गार हृदय का ज्वालामुखी फाड़कर निकलना' चाहता है, वहाँ तो शैली ऐसी ही बलशाली हो गयी है, और जहाँ किसी मार्मिक अथवा सुन्दर मनोहारी दृश्य या भाव को स्पष्ट करना होता है, वहाँ शैली में सरस अलंकारों की उन्होंने योजना की है। इससे भी शैली में विशेष सजीवता आ जाती है। उदाहरण के लिए—

(१) गंगा ने उन्हें पकड़ने को हाथ फैलाये, पर उसके दोनों हाथ फैले ही रह गये, जैसे किसी गोली खाकर गिरनेवाली चिड़िया के पंख खुले रह जाते हैं—सेवासदन, पृ० १४।

(२) एक ही क्षण में वसंतकुमार लहरों में समा गये। केवल कमल के फूल पानी पर तैरते रह गये; मानों जीवन का अन्त हो जाने के बाद उसकी अतृप्त लालसा अपनी रक्तरंजित छटा दिखा रही हो—प्रतिज्ञा, पृ० ३३।

(३) उसका कोमल गात ऐसा कृश हो गया था मानों किसी हास्य की प्रतिध्वनि हो, मुख किसी वियोगिनी की पूर्व स्मृति की भाँति मलिन और उदास—प्रतिज्ञा, पृ० ३३।

(४) जेल में आकर दो ही महीने में सुखदा का चित्त कुछ अधिक कोमल हो गया है जैसे पाल में पड़ कर कोई फल अधिक रसीला, स्वादिष्ट, मधुर और मुलायम हो जाता है — कर्मभूमि, पृ० ३४७।

(५) आनन्द महीनों चिंता के बंधन में पड़े रहने के बाद आज जो छूटा तो छूटे हुए बछड़े की भाँति कुलाचें मारने लगा—कर्मभूमि, पृ० १०४।

अलंकारों का यह विधान सुन्दर और मार्मिक तो अवश्य है, परन्तु जब लेखक इन्हीं के फेर में पड़कर अलंकारों की झड़ी सी

लगाने लगता है तब शैली में स्वाभाविक मार्मिकता नहीं रह जाती; ऐसे स्थलों पर प्रायः प्रयासपूर्ण चमत्कार-प्रदर्शन प्रधान होता है। प्रेमचंदजी की रचनाओं में कुछ ऐसे स्थल भी हैं—

(१) व्याकुल हो गयी—जैसे दीपक को देखकर पतंग, वह अधीर हो उठी, जैसे खाँड़ की गन्ध पाकर चींटी। वह उठी और द्वारपालों, चौकीदारों की दृष्टि को बचाती हुई राजमहल के बाहर निकल आयी—जैसे वेदना-पूर्ण क्रन्दन सुनकर आँसू निकल आते हैं।

(२) जैसे सुन्दर भाव के समावेश से कविता में जान पड़ जाती है, और सुन्दर रंगों से चित्र में, उसी प्रकार दोनों बहनों के आ जाने से झोपड़े में जान आ गयी; अंधी आँखों में पुतलियाँ पड़ गयीं। मुरझाई हुई कली शांता अब खिलकर अनुपम शोभा दिखा रही है। सूखी हुई नदी उमड़ पड़ी है। जैसे जेठ-वैसाख की तपन की मारी हुई गाय सावन में निखर आती है और खेतों में किलोलें करने लगती हैं, उसी प्रकार विरह की सताई हुई रमणी अब निखर गयी है।

ऊपर के उदाहरण देखकर कह सकते हैं कि उनका अलंकार-विधान—उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का आश्रय लेकर विषय को स्पष्ट और सुन्दर कर देना—कहीं-कहीं सुन्दर प्रभावोत्पादक हो जाता है और लेखक की अभीष्टि-सिद्धि में सहायक हो जाता है तो कहीं-कहीं पर अति के कारण अस्वाभाविक और कृत्रिम-सा लगने लगता है। हाँ, इसमें कोई संदेह नहीं कि कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में गद्यकाव्य-सा आनन्द आता है। ऐसे स्थलों पर भावों की सुकुमारता और मधुरता का मिश्रण पाठकों को मुग्ध कर लेता है। उदाहरण के लिए—

गगन-मंडल में चमकते हुए तारागण व्यंग्य-दृष्टि की भाँति हृदय में चुभते थे। सामने वृक्षों के कुञ्ज थे, विनय की स्मृतिमूर्ति, श्याम, करुण स्वर की भाँति, कंपित धुएँ की भाँति असंबद्ध, यों निकलती हुई मालूम होती जैसे किसी संतप्त हृदय से हाय की ध्वनि निकलती है—रंगभूमि, पृ० ४५६।

सरलता के साथ-साथ प्रेमचंद जी की शैली में प्राय: सर्वत्र एक प्रवाह रहता है। शिथिलता का अभाव तो ऐसे स्थलों पर रहता ही है, साथ ही सजीवता के कारण एक प्रकार की प्रभावोत्पादक मनोहरता आ जाती है। वाक्य इस शैली के प्राय: छोटे-छोटे हैं जो 'गम्भीर घाव' करते हैं। एक वाक्य दूसरे से निकलकर इस शैली को और भी गठित कर देता है। भाषा तो ऐसे स्थलों की प्रचलित होती ही है। उदाहरण के लिए भारतीय किसान का यह चित्र देखिए--

सीधे-साधे किसान, धन हाथ आते ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं, दिव्य समाज की भाँति वे पहले अपने भोग-विलास की ओर नहीं दौड़ते। मेहनत तो गांव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चंद्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना छिटक जाता तो कुछ न कुछ पैदा हो ही जाता था। सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था। तीन वर्ष लगातार ऊख लगती गयी, उधर गुड़ का भाव तेज था, कोई दो-ढाई हजार हाथ में आ गये। बस, चित्त की वृत्ति धर्म की ओर झुक पड़ी। साधु-सन्तों का आदर-सत्कार होने लगा, द्वार पर धूनी जलने लगी।

कानूनगो इलाके में आते, तो सुजान महतो की चौपाल में ठहरते। हल्के के हेड-कांस्टेबिल, थानेदार, शिक्षा-विभाग के अफसर एक-न-एक उस चौपाल में पड़ा ही रहता। महतो मारे खुशी के फूले न समाते। धन्य भाग्य ! उनके द्वार पर इतने बड़े-बड़े हाकिम आकर ठहरते हैं। जिन हाकिमों के सामने उसका मुँह न खुलता था, उन्हीं की अब महतो-महतो कहते जबान सूखती थी। कभी-कभी भजन-भाव हो जाता एक महात्मा ने डौल अच्छा देखा तो गाँव में आसन जमा दिया। गाँजे और चरस की बहार उड़ने लगी। एक ढोलक आयी, मँजीरे मँगवाये गये, सत्संग होने लगा। यह सब सुजान के दम का जहूरा था। घर में सेरों दूध होता, मगर सुजान के कण्ठ तले एक बूँद भी जाने की कसम थी। कभी हाकिम लोग चखते, कभी महात्मा लोग—'सुजान भगत' शीर्षक कहानी।

इस अवतरण में जैसे मीठे व्यंग्य की पुट है वैसी ही उनकी रचनाओं में कई स्थानों पर मिलती है । यद्यपि उन्होंने सामाजिक बुराइयों, राजनीतिक दोषों, धार्मिक पाखंडों, नैतिक कुरीतियों आदि की व्यंग्यात्मक शैली में विवेचना की है तथापि उनका व्यंग्य कभी इतना चुटीला नहीं होता जो किसी को कष्ट पहुँचाये, उसमें सर्वत्र एक मिठास रहती है जो मनोरंजन के साथ-साथ हमारी आँखें भी खोलती है। हास्य और व्यंग्य की मिश्रित पुट इस अवतरण को कैसा मार्मिक बना देती है ! वकील साहब अपने खर्चे में कमी करने की चिंता में हैं । परेशान होते-होते एक विचार सूझा कि रातिब में कुछ कमी कर दी जाय; इस पर उनकी स्त्री सुभद्रा व्यंग्य करती हुई कहती है–

हाँ, यह दूर की सूझी ! घोड़े को रातिब दिया ही क्यों जाय ? घास काफी है । यही न होगा, कूल्हे पर हड्डियाँ निकल आयँगी । किसी तरह मर-जीकर कचहरी तक ले ही जायगा । कोई यह तो नहीं कहेगा कि वकील साहब के पास सवारी नहीं है—सेवासदन, पृ० ६९ ।

उनकी शैली की अन्तिम विशेषता है—मुहावरों और सूक्तियों का सुन्दर प्रयोग । उर्दू पर पूर्ण अधिकार होने के कारण मुहावरों की झड़ी-सी लगाना तो प्रेमचंद जी के लिए स्वाभाविक था और उर्दू-क्षेत्र में आने वाले लेखकों ने ऐसा किया भी है; पर चार-पाँच वाक्यों के बीच में एक-आध 'मर्मभेदनी और अनुभूतिमूलक' सूक्ति जड़ देना उनकी निजी विशेषता है । इन सूक्तियों में जीवन के सच्चे अनुभवों का सार रहता है और इसलिए इनमें हृदय को छूने की शक्ति है । दो-एक सूक्तियाँ देखिए—

(१ प्रेम हृदयों को मिलाता है, देह पर उसका वश नहीं चलता ।

२) प्रेम हृदय के समस्त सद्भाव का शान्त स्थिर उद्गार-हीन समावेश है ।

(३) अनुराग, यौवन रूप या धन से नहीं उत्पन्न होता । अनुराग अनुराग से उत्पन्न होता है ।

(४ बड़े आदमियों के रोग भी बड़े होते हैं। वह बड़ा आदमी ही क्या, जिसे कोई छोटा रोग हो।

(५) मनुष्य बराबर वालों की हँसी नहीं सह सकता; क्योंकि उनकी हँसी में ईर्ष्या, व्यंग्य और जलन होती है।

ऐसी सूक्तियों से हमारे जीवन का संबंध है और इसीलिए किसी समय इनका उसी प्रकार आदर होगा जिस प्रकार कबीर या तुलसी की सूक्तियों का आज हो रहा है।

प्रश्न—"स्वदेश की अभी तक किसी ने व्याख्या नहीं की, पर नारियों की मानरक्षा उसका प्रधान अंग है और होना चाहिए।" इस कथन के आधार पर प्रेमचंद जी के उपन्यासों में आधुनिक स्त्री-समाज की स्थिति पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—यों तो आज भारतवर्ष वैज्ञानिक उन्नति का प्रश्न छिड़ने पर संसार के अनेक सभ्य देशों से पिछड़ा हुआ समझा जाता है, तथापि भारतीय धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक नियमों का निर्माण जिस वैज्ञानिक ढंग से किया गया था, उसको आज विज्ञान-विशारद भी मानते हैं। प्रेमचंद जी ऐसे लेखक थे जिनको भारतीय आदर्शों पर अभिमान था। उनकी कृतियों का विवेचनात्मक अध्ययन करने पर हमें इस कथन की सत्यता का विशेष ज्ञान हो सकता है।

सामाजिक उन्नति, हमारे भारतीय आदर्श के अनुसार, स्त्री-पुरुष की पारस्परिक सहानुभूति पर अवलंबित रहती है। इसी से हमारे यहाँ स्त्री को पुरुष की अर्द्धांगिनी कहा गया है। सामाजिक जीवन की बात तो जाने दीजिए, धार्मिक कृत्यों में स्त्री के बिना पति और पति के बिना स्त्री का कार्य पूर्ण नहीं समझा जाता। महाराज रामचन्द्र ने अपने यज्ञ में, सीता की अनुपस्थिति में, स्वर्ण की प्रतिमा बना कर इस बात को और भी महत्व दे दिया था। कालांतर में भक्ति के उपासकों ने—संकेत मैथिल-

कोकिल विद्यापति और हिंदी के शृंगारी कवियों की ओर है—कृष्ण और राधा की अलौकिक प्रीति को जनसाधारण की दृष्टि में लौकिक बनाकर इस 'नियम' को और भी दृढ़ कर दिया। अस्तु !

हम देखते हैं, प्रेमचंद जी की दृष्टि में स्त्री पुरुष की 'सहचरी' है, 'अनुचरी' नहीं। हाँ, अपनी सेवा, भक्ति और अनुपम त्याग के कारण, भारतीय नारी स्वयं अपने को पति की अनुचरी समझती है। यही बात 'कायाकल्प' (पृ० ४४४) के नायक की स्त्री भी कहती है—नारी के लिए पुरुष-सेवा से बढ़कर और कोई विलास, भोग और शृंगार नहीं है। परन्तु कौन कह सकता है कि नारी का यह त्याग, उसका यह सेवा-भाव ही आज उसके अपमान का कारण नहीं हो रहा है, पुरुष इसको अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझने लगे हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे, स्नेह और आदर के साथ दी जानेवाली सरल प्रकृति के किसानों की भेंट को, आज हम 'हक' के नाम से पुकारते हैं ?

प्रेमचंदजी स्त्रियों का बड़ा सम्मान करते थे। उनके जिस मातृत्व पद को—आधुनिक अर्थशास्त्र के युवक-विद्यार्थी वर्तमान आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति के कारण कुल, समाज और राष्ट्र के लिए भार समझते हैं उसे ही वे कितना सम्मान की दृष्टि से देखते थे, यह हमें मिस्टर मेहता के गोविंदी से कहे हुए इन वाक्यों से ज्ञात हो जाता है—

मैं समझता हूँ कि नारी केवल माता है और इसके उपरांत वह जो कुछ है; वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है। एक शब्द में मैं उसे लय कहूँगा, जीवन का व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी—(गोदान, पृ० ४३३)।

यह सत्य है कि सामाजिक दशा पर आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का बड़ा प्रभाव पड़ता है, परन्तु वास्तव में वे अर्थशास्त्रज्ञ इस प्रभाव की ओर ध्यान नहीं देते और न स्त्री के मातृत्व पद की इसलिए अवहेलना

ही करते हैं कि संतानोत्पत्ति से हमारी आर्थिक दशा पर कोई प्रभाव पड़ेगा, प्रत्युत इसका प्रधान कारण सुखोपभोग की इच्छामात्र है। यह मेरा निजी मत है; अतः विचारणीय है।

परन्तु प्रेमचंदजी की उक्त सम्मति उनके अंतिम उपन्यास 'गोदान' की होने के कारण, संभव है, कुछ महानुभावों को आपत्तिजनक जान पड़े, इसलिए स्त्री-विषयक उनके विचारों की विवेचना करने के लिए हमें उनके प्रधान उपन्यासों का क्रमानुसार अध्ययन करना पड़ेगा। आरम्भ में उनका 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास की स्त्रियों में सुमन का चरित्र ही प्रेमचन्द की मार्के की कृति है। गार्हस्थ्य जीवन की शोचनीय परिस्थिति और आर्थिक कठिनाइयों के कारण उसका 'पतन' होता है; परन्तु प्रेमचन्द जी उसका बड़ी सुन्दरता और कुशलता से उद्धार करते हैं। हिंदू समाज चाहे अपने विचारों की संकीर्णता के कारण उसे न अपनाकर अपनी क्षुद्रता प्रदर्शित करता रहे, चाहे हमारे सुधारक नामधारी जीव प्राचीन लकीर के फकीरों के डर से उसे अपनाने में हिचकते रहें, चाहे हमारे तिलकधारी उसे विधवाश्रम में रहने भर को भी स्थान न दें, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस विशालहृदयता के कारण 'चरित्रहीन' के सुप्रसिद्ध बंगाली उपन्यासकार ने अपने नायक की 'होस्टल' की प्रेमिका का धर्म बचाया है, उसी प्रकार प्रेमचन्द जी ने हिंदू समाज की अनेक निर्वासिता, उपेक्षिता तथा अपमानित स्त्रियों का सम्मान किया है।

'प्रेमाश्रम' में परिस्थिति दूसरी है। उसमें प्रधानपात्रियों को आर्थिक संकट नहीं है। हाँ, अपने पतियों की ओर से वे धर्म-संकट में पड़ जाती हैं—ज्ञानशंकर लोभी हैं और अपने स्वजनों का अहित करके भी धन प्राप्त करना चाहते हैं; प्रेमशंकर समुद्रयात्रा से लौट कर शुद्धिसंबंधी कार्य को पाखण्ड समझते हैं। ज्ञानशंकर की स्त्री का इस प्रकार पति का विरोध करना मनुष्यता की दृष्टि से समाज के लिए, सत्य ही, आवश्यक है और प्रेमशंकर की स्त्री तो भारतीय आदर्श नारी की प्रति-

मूर्ति है ही, जिसमें त्याग है, सेवाभाव है और पति के इशारे पर न्यो-छावर हो जाना जिसका गौरव है।

'कायाकल्प' के राजा की प्रथम तीन-तीन रानियों से हमें कोई मतलब नहीं, मनोरमा का त्याग, प्रिय स्वामी की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए अपने सुख, अपने विलास, अपने जीवन-सार, सबका बलिदान कर देना वास्तव में बड़े महत्व का है। इँगलैंड के प्रसिद्ध लेखक चार्ल्स डिकेंस के 'ए टेल आव टू सिटीज' नामक उपन्यास का प्रतिद्वंद्वी नायक सिडनी कार्टन जिस प्रकार अपनी प्रेमिका के पति को बचाने के लिए अपने प्राण दे देता है, उससे 'कायाकल्प' की मनोरमा का त्याग कहीं बढ़कर माना जायगा।

इसी प्रकार 'गबन' की नायिका भी यद्यपि आरंभ में धोखा खा जाती है तथापि वह मानिनी हिंदू स्त्री है। उपन्यास का विषय दूसरा होने के कारण प्रेमचन्द जी ने उसके चरित्र की इस विशेषता पर विशेष प्रकाश नहीं डाला, इससे हम भी इसे छोड़ 'रंगभूमि' की रानी जाह्नवी की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। भारतीय इतिहास के हिन्दू-सम्राटों के काल में—रामायण-महाभारत काल में तो कम, राज-पूतों के समय में बहुत ही अधिक—हमने देश, धर्म, सम्मान आदि के लिए अपने पुत्रों का बलिदान करती हुई अनेक माताएँ देखी हैं। आधुनिक युग में वैसी ही वीर माता की सृष्टि करके प्रेमचंद जी ने उस कमी को दूर किया है जो वर्तमान-काल में देश के लिए अत्यंत आवश्यक होते हुए भी, हमारे उपन्यासों में नहीं मिलती। अपने पुत्र को हँसते-हँसते बलिदान कर देने का जो संदेश- रानी जाह्नवी ने हमारी माताओं और बहनों को दिया है, राजपूत-काल का अध्ययन करने वाले इसे भली भाँति जानते होंगे।

यह अंतिम बात अवसर अथवा परिस्थिति-विशेष के लिए ही आवश्यक होती है; मान-सम्मान, धर्म और देश के लिए प्राण दे देना

मनुष्य मात्र की सजीवता का लक्षण होते हुए भी, स्त्रियों का प्रधान कर्तव्य नहीं है। सामाजिक जीवन में स्त्री का पति के साथ व्यवहार ही मुख्य धर्म समझा जाता है। ऊपर पति के प्रति भारतीय स्त्री के जिस व्यवहार की ओर संकेत किया गया है, उसमें आज परिवर्तन हो रहा है; स्त्रियाँ अपनी 'स्वतंत्रता' के लिए प्रयत्नशील हैं। दूसरे शब्दों में, आज प्राचीन भारतीय और आधुनिक पाश्चात्य आदर्शों का संघर्ष हो रहा है। विचार से देखा जाय तो हमारी सबसे प्रधान सामाजिक समस्या यही है, प्रेमचंद जी ने इसे बहुत अच्छी तरह समझा था। उनका 'गोदान' वास्तव में ऐसा रंगमंच है जहाँ इन दोनों आदर्शों से प्रभावित स्त्रियों का संघर्ष दिखाया गया है। मिस्टर खन्ना की स्त्री हमारी भारतीय नारी है जो पति से तिरस्कृत होकर भी पति-सेवा और पुत्र-प्रेम को जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझती जाती है; दूसरी ओर मालती है जिसे हम आधुनिक पाश्चात्य रँग में रंगी फुदकती चिड़िया के रूप में पाते हैं। हमारे मिस्टर खन्ना-सरीखे आधुनिक शिक्षित और धनी-मानी सज्जन अपनी बीबी को 'दाल-भात' बताकर 'मिठाई' चाहते हैं और रंग-रेलियों में मस्त मालती-सरीखी 'कुमारियों' के तलुए चाटने में ही जीवन की सफलता समझते हैं। फलत: अपनी स्त्री का तिरस्कार करके उन्हें जैसी मानसिक अशांति होती है, उनकी दशा जैसी दयनीय हो जाती है, उसका परिचय हमें खन्ना के चरित्र से मिल जाता है।

अशांति और निराशा-प्रदर्शन-संबंधी इस कार्य में, संभव है, किसी को विचारों की संकीर्णता दिखायी दे, परन्तु स्त्री-स्वतंत्रता-विषयक मिस्टर मेहता का व्याख्यान उस सत्य और सूक्ष्म विवेचना का परिचायक है जो भारतीय सामाजिक जीवन को सुखद और उन्नत बनाने तथा आधुनिक प्रचलित सामाजिक दोषों को दूर करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। अपवाद-स्वरूप धनियों के—जिनकी संख्या भारत में एक प्रतिशत से अधिक नहीं है—एक आध विवाह को छोड़कर हमें तो यह विदेशी बीज भारत की उर्वरा भूमि में फलता-फूलता नहीं दिखायी देता। यदि

वैज्ञानिक ढंग से इस कार्य में कोई सफलता भी प्राप्त कर लेगा तो उसमें पाश्चात्य कृत्रिमता ही मिलेगी, भारतीय स्वाभाविकता नहीं।

प्रश्न हो सकता है कि क्या प्रेमचंद जी आधुनिक स्त्री-शिक्षा के विरोधी हैं। इसका सीधा-सादा उत्तर यही है कि स्त्री-शिक्षा का हमारा उद्देश्य स्त्री को उसका कर्तव्य समझाना और पति के कार्य में सहायता करने योग्य बनाना मात्र रहा है। प्रेमचंद जी इसी के पक्षपाती हैं। आधुनिक शिक्षित नवयुवतियों में जैसी लाजहीन उद्दंडता या स्वच्छंदता दिखायी देती है, उसे वे आदर की दृष्टि से नहीं देखते। ध्यान रहे कि स्त्रियों के प्रति उनके हृदय में बड़ा सम्मान था, फिर भी मिस मालती सरीखी शिक्षित नव-युवतियाँ और उनका वाह्य आडंबर-पूर्ण शृंगार उन्हें पसंद नहीं था। मिस मालती का चित्र देखिए—

दूसरी महिला जो ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख छवि पर हँसी फूटी पड़ती है, मिस मालती हैं। आप इँगलैंड से डाक्टरी पढ़ आयी हैं और अब प्रेक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल, चपलता कूट-कूट कर भरी हुई, झिझक या संकोच का नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिर-जवाब, पुरुष मनो-विज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है वहाँ हाव-भाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिनमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया है—गोदान (पृ० ८९-९०)।

यह है हमारी शिक्षिता, अविवाहिता, नवयुवती का चित्र। आधु-निक स्त्री स्वतंत्रता-संबंधी आंदोलन के पक्षपाती पुरुष भी बहुत हैं और स्त्रियाँ भी। अपने हृदय पर हाथ रखकर वे स्वयं सोचें—केवल मौखिक उपदेशों और व्याख्यानों से काम नहीं चलेगा—कि क्या वे अपनी पुत्री को उक्त मिस मालती बनाना चाहती हैं? क्या मिस मालती बना-कर अपने गृहस्थ-जीवन में उनको सुख मिल सकेगा।

आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा का जो सबसे भयंकर प्रभाव हमारे नवयुवकों और नवयुवतियों पर पड़ा है, वह हमारी सम्मति में यही है कि उन्होंने संभवत: भौतिकता को ही प्रधानता देकर गंभीर अध्ययन, मौलिक विवेचन और सरल आचरण संबंधी प्राचीन भारतीय आदर्श को सर्वथा भुला दिया है। फलत: हमारे पढ़े-लिखे युवकों को फैशनेबिल लेडियाँ और शिक्षिता अविवाहित नवयुवतियों को फैशनेबुल जेंटिलमैन ही पसंद आते हैं। यदि इस 'पसंद' का कारण समता, प्रेम, भक्ति, त्याग आदि की नींव होती तो बड़ी सुंदर बात थी, परंतु यदि इसका कारण क्षणिक भावावेश-सा अज्ञान ही हो, तब हम उसकी प्रशंसा नहीं करते। प्रेमचंद जी के विचार भी यही हैं। 'गोदान' के मिस्टर खन्ना धनी हैं, सज्जन, शिक्षित, उदार, अधिकारी—जनता की दृष्टि में सभी कुछ—हैं। परंतु उनको अपनी सती-साध्वी स्त्री गोविंदी से प्रेम नहीं है। हाँ, उनका हृदयोद्यान मिस मालती के कृत्रिम कलरव से गूँज उठता है। प्रेमचंदजी की दृष्टि में मिस्टर खन्ना का इस प्रकार अपनी पत्नी से विश्वासघात करना सरासर मूर्खता है—घर आये नाग न पूजिए, बाँबी पूजन जाय-सा है। सारी परिस्थिति की आलोचना मिस्टर मेहता के मुँह से कराते हुए वे कहते हैं—

खन्ना अभागे हैं जो हीरा पाकर काँच का टुकड़ा समझ रहे हैं। सोचिए, (उनकी स्त्री में) कितना त्याग है और उसके साथ ही (पति से) कितना प्रेम है ! खन्ना के कामासक्त मन में शायद उनके लिए रत्ती भर स्थान भी नहीं है, लेकिन आज खन्ना पर कोई आफत आ जाय, तो वह अपने को उन पर न्योछावर कर देगी। खन्ना आज अंधे या कोढ़ी हो जायँ तो भी उसकी वफादारी में फर्क न आयेगा। अभी खन्ना उसकी कद्र नहीं कर रहे हैं, मगर आप देखेंगे, यही खन्ना एक दिन उनके चरण धोकर पियेंगे। मैं ऐसी बीबी नहीं चाहता जिससे मैं आइंस्टीन के सिद्धांत पर बहस कर सकूँ, या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ देखा करे। मैं ऐसी औरत चाहता हूँ, जो मेरे जीवन को

पवित्र और उज्जवल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से—गोदान (पृ० २४४)।

ऊपर विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि प्रेमचंद जी स्त्रियों के लिए शिक्षा की आवश्यकता समझते थे, परंतु सुप्रसिद्ध अँगरेजी लेखक जान रस्किन की तरह उनकी स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य भी स्त्रियों को दायित्व का महत्व समझ जाना था, फैशन अथवा विलास-प्रियता की वृद्धि करना नहीं, जिसे आज सभ्यता के अन्तर्गत बतलाया जाता है। पाश्चात्य देशों की तरह स्त्रियों से वे पैसा नहीं पैदा कराना चाहते थे। इस बात का प्रमाण 'कायाकल्प' में उस स्थान पर मिलता है जब उसका नायक अपनी स्त्री के लेख के पारिश्रमिक-संबंधी धन से लाये हुए कंबल को ओढ़ने की अपेक्षा, सर्दी में ठिठुरते हुए रात काट देता है। कुछ लोग इसे लकीर का फकीर-सा बतलावेंगे, परंतु वस्तुत: इसका कारण यह है कि भारतीय समाज में स्त्री के भरण-पोषण का अधिकार पुरुष को है। स्त्री यदि स्वयं इसकी चिंता करेगी, स्वयं पैसा पैदा करने का प्रयत्न करेगी, तो भारतीय आदर्श के विपरीत, यह निश्चित है कि पति से स्वाधीन होने का विचार उसमें पैदा होगा, जो क्रमश: किसी न किसी समय में, पारस्परिक विरोध का रूप धारश करेगा। इसका परिणाम अन्तत: कलह है। सम्भव है, साथ-साथ धन कमाने वाले दम्पति में प्रेम, सहानुभूति और त्याग के सात्विक भाव भी हों, पर ऐसा प्राय: बहुत कम होता है। कारण, दिन भर के हारे-थके पुरुष की सारी थकावट घर की स्वामिनी की एक मधुर मुस्कान से तो दूर हो सकती है पर कमाऊ स्त्री के थके-माँदे प्यार से नहीं। एक शब्द में, इसका आशय यही है कि प्रेमचंद जी स्त्री की शिक्षा के पक्षपाती होते हुए भी उसे घर की स्वामिनी बनाना चाहते हैं, बाहर के सार्वजनिक जीवन का ऐसा प्रतिद्वन्द्वी नहीं जिसको, हम जानते हैं कि कारण-विशेष से सदैव 'प्रिफरेंस' दिया जाता है।

रह गयी स्वतंत्रता-संबंधी आधुनिक स्त्री-आंदोलन की बात। प्रेमचंद

जी ने, जान पड़ता है, इस महत्वपूर्ण समस्या का गम्भीर अध्ययन किया था। उनकी सम्मति है कि स्त्रियाँ स्वतंत्रता के लिए जो आंदोलन कर रही हैं, वह केवल इसलिए कि आज पुरुष समाज उनका आदर नहीं करना चाहता, उसमें गुण नहीं हैं और न है गुणग्राहकता। 'गोदान' की मिसेज खन्ना के मुँह से यही बात सुनिए—

वास्तव में पुरुष का कर्तव्य यह भूला हुआ है कि नारी श्रेष्ठ है और सारी जिम्मेदारी उसी पर है। श्रेष्ठ पुरुष है और उसी पर गृहस्थी का सारा भार है। नारी में सेवा, संयम और कर्तव्य सब कुछ वही पैदा कर सकता है। अगर उसमें इन बातों का अभाव है तो नारी में भी रहेगा। नारियों में आज जो विद्रोह है, इसका कारण पुरुषों का इन गुणों से शून्य हो जाना है।

यह विचार अधिकांश में ठीक ही है। भौतिकवाद संबंधी पाश्चात्य आदर्श को जीवन का चरम लक्ष्य समझने वाले नवयुवक स्त्रियों को केवल मनोरंजन का ऐसा मुख्य साधन समझते हैं जो दैवी एवं मानुषी सामाजिक नियमों की सहायता से उन्हें उपलब्ध है। युवावस्था के आवेग-पूर्ण आवेश में वे गार्हस्थ्य जीवन की शांति और सामाजिक उन्नति का विचार न कर नवयुवतियों के मुख्यतः वाह्य रूप और आकर्षण पर मुग्ध हो जाते है। परिणाम-स्वरूप, रूप का वाह्य आकर्षण उनके आवेशपूर्ण उन्माद को उत्तेजित तो अवश्य करता है परंतु तुष्ट नहीं। उधर मानव-जीवन के समस्त संघर्ष का मूल कारण पूर्व सुख प्राप्ति-संबंधी उद्योग है। फल यह होता है कि संतुष्ट न होकर अंत में उनका जीवन अशांतिपूर्ण हो जाता है। इस असंतोष और अशांति को दूर करके सुख-संतोष प्राप्त करना ही प्रेमचंद के स्त्री-समाज का प्रधान उद्देश्य है। इसका उपाय उन्होंने मिस्टर मेहता के व्याख्यान द्वारा (गोदान में) बता दिया है—नवयुवतियों की शंकाओं का समाधान भी उन्होंने कर दिया है। अपने सामाजिक-जीवन गृहस्थ में जिस शांति और सुख-संतोष के लिए मनुष्य लालायित और प्रयत्नशील रहता है वही

प्राप्त करना जिन्होंने अपना जीवनादर्श बना लिया है—या समझते हों—उन्हें मिस्टर मेहता के उस व्याख्यान का सहृदयतापूर्वक अध्ययन करना चाहिए। स्त्रियों की आधुनिक समस्या भी, प्रत्येक प्रश्न को राजतीतिक दृष्टि से देखने वाले जिसे आंदोलन के नाम से पुकारते हैं—उससे स्पष्ट हो जाती है और उसके पक्षपातियों की शंकाओं का समाधान करने में भी हम सफल हो सकते हैं।

इस संबंध में एक बात वे पुरुषों से भी पूछते हैं। हम क्यों ऐसा समझते हैं कि स्त्रियों का जीवन केवल भोग विलास के लिए ही है? क्या उनका हृदय ऊँचे और पवित्र भावों से शून्य होता है? वास्तव में हमीं ने उन्हें कामिनी, रमणी, सुंदरी आदि विलास सूचक नाम देकर वास्तविक वीरता, त्याग और उत्सर्ग से शून्य कर दिया है। अगर सभी पुरुष वासनाप्रिय नहीं होते तो सभी स्त्रियाँ वासनाप्रिय क्यों होने लगीं? (कायाकल्प पृ० ४३६) सत्य ही इन बातों पर उदारतापूर्वक विचार करने से ही यह सामाजिक समस्या हल हो सकती है। हमारे सुधारक कोरी लेक्चरबाजी न करके समस्या अथवा आंदोलन के मूल कारणों की, प्रेमचन्द की तरह, विवेचना करेंगे, तभी उन्हें सफलता मिलेगी।

प्रश्न—'हिंदी उपन्यास का विकास' पर एक निबंध लिखिए।

उत्तर—(प्रथम विकास—सन् १८५० से १९०० तक)—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से हिंदी में आधुनिक ढंग के उपन्यास लिखने का सूत्रपात हुआ। तत्कालीन लेखकों ने एक ओर तो उपन्यासों से समृद्ध बँगाल-साहित्य से परिचय प्राप्त किया और दूसरी ओर अँग्रेजी से। इन भाषाओं के उपन्यास मनोरंजन की दृष्टि से तो उत्तम थे ही, कला के नाते भी श्रेष्ठ समझे जाते थे। इनसे परिचय प्राप्त करके हिंदी लेखकों का एक दल तो इन भाषाओं की रचनाओं का अनुवाद करने में लग गया और दूसरा उन्हीं के ढङ्ग पर मौलिक रचनाएँ

तैयार करने में। पंडित राधाचरण गोस्वामी ने 'विरजा', 'सावित्री', और 'मृणमयी', बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'इला' (१८९५), 'प्रमीला' (१८९६), 'जया' और 'मधुमालती' (१८९८), तथा बाबू रामकृष्ण वर्मा ने 'चित्तौरचातकी' नामक उपन्यासों का बंगला से अनुवाद किया। बाबू गदाधरसिंह-कृत 'वंग विजेता' और 'दुर्गेशनंदनी' के अनुवाद भी अच्छे हैं। पंडित प्रतापनारायण मिश्र तथा उनके सहयोगी दो-एक अन्य लेखक भी यही कार्य कर रहे थे। बँगला के अतिरिक्त उर्दू और अँगरेजी से भी कुछ उपन्यासों के अनुवाद इस समय के लेखकों ने किये जिनमें बाबू रामकृष्ण वर्मा के 'ठगवृत्तांतमाला' (१८८९), पुलिस वृत्तांत माला, अकबर (१८९०) और 'अमलावृत्तांत माला' (१८९४) उल्लेखनीय हैं। संस्कृत की कादम्बरी का अनुवाद भी बाबू गदाधरसिंह ने बँगला संस्करण के आधार पर किया था।

भारतेन्दु-कालीन लेखकों का दूसरा उपन्यासप्रेमी दल विभिन्न भाषीय मौलिक कृतियों तथा हिंदी में अनूदित उनके संस्करणों का अध्ययन करके उसी ढङ्ग की मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत करने को प्रवृत्त हुआ। इस क्षेत्र में काम करने वालों में 'परीक्षागुरु' नामक उपन्यास के लेखक श्रीनिवासदास तथा 'नूतनब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' के लेखक बालकृष्ण भट्ट का नाम उल्लेखनीय है।

इन लेखकों की अनुवादित और मौलिक रचनाओं से इतना लाभ अवश्य हुआ कि आगे के हिंदी लेखकों को समकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा अन्यान्य सामयिक समस्याओं पर परोक्ष-रूप से विचार करने का एक मनोरंजक कलापूर्ण ढ़ग ज्ञात हो गया, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। बँगला और अँगरेजी उपन्यास-साहित्य के अध्ययन से स्वतंत्र और मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत करने की प्रेरणा भी मिली।

द्वितीय विकास—(सन् १९०० से १९१५ तक)

हिंदी उपन्यासों के विकास का द्वितीय युग बाबू गोपालराम गहमरी के बँगला उपन्यासों के अनुवादों से आरम्भ होता है। इन्होंने अपना

यह कार्य सन् १९०० से पहले ही आरंभ कर दिया था, उस समय इन के 'चतुर चंचला' (१८९३), 'भानुमती' (१८९४) और 'नये बाबू' (१८९४) आदि अनुवादित उपन्यास सामने आये थे। इस नवीन युग में इन्होंने जो अनुवाद सामने रखे, उनमें 'बड़ा भाई' (१९००), 'देवरानी जेठानी' (१९०१), 'दो बहिनें (१९०२), 'तीन पतोहू' (१९०४), 'सास-पतोहू' आदि उल्लेखनीय हैं।

गहमरी जी के अतिरिक्त श्री उदितनारायण, पंडित ईश्वरी प्रसाद और पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ने बँगला के अनेक उपन्यास अनुवादित करके हिन्दी पाठकों के सामने रखे। यहाँ तक कि सर्व श्री बंकिमचन्द्र, रमेशचन्द्रदत्त, चण्डीशरणसेन, शरच्चन्द्र, चारुचन्द्र और कवीन्द्र रवीन्द्र आदि बँगला के अनेक प्रमुख उपन्यास-लेखकों की सुन्दर रचनाएँ हिन्दी में प्राप्त हो गयीं।

बँगला के अतिरिक्त उर्दू, मराठी, अँगरेजी आदि अनेक देशी-विदेशी भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद करने की ओर भी हिंदी-लेखकों का ध्यान गया। ऐसे अनुवादकों में बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त ने उर्दू से 'पूना में हलचल' और बाबू रामचन्द्र वर्मा ने मराठी से 'छत्रसाल' का अनुवाद किया। गुजराती की कई रचनाएँ भी हिन्दी में अनूदित की गयीं और अंगरेजी के अनुवादित उपन्यासों में 'लैला', 'लन्दन-रहस्य' तथा 'टाकाका की कुटिया' के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस युग के मौलिक उपन्यास-लेखकों में देवकीनन्दन खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता और व्रजनन्दन सहाय के नाम प्रसिद्ध हैं। खत्री जी ने 'नरेन्द्रमोहिनी', 'कुसुमकुमारी', 'धीरेन्द्रवीर', 'चन्द्रकांता और 'चन्द्रकान्ता-सन्तति' आदि तिलस्मी और ऐयारी घटना-प्रधान उपन्यास लिख, साधारण मनोवृत्ति के बहुत से पाठक पैदा कर, काफी नाम और पैसा कमाया। गोस्वामी जी का कार्य साहित्यिक दृष्टि से खत्रीजी से श्रेष्ठ है। 'तारा', 'चपला', 'तरुण तपस्विनी', 'रजिया बेगम', 'लीलावती', 'लवंगलता', 'हृदयहारिणी',

'लखनऊ की कब्र', इत्यादिक इनके लगभग ६५ उपन्यासों में सजीव सामाजिक चित्र तो मिलते ही हैं, वर्णन भी चमत्कारपूर्ण और चरित्र-चित्रण स्वाभाविकता लिए हुए हैं। इनके कुछ उपन्यास ऐतिहासिक भी हैं। उपाध्यायजी ने भाषा के नमूने दिखाने के लिए 'ठेठ हिन्दी का ठाठ', 'अधखिला फूल और 'वेनिस का बाँका' नाम के उपन्यास लिखे। मेहता जी की रचनाएँ 'धूर्तरसिकलाल', 'हिंदू गृहस्थ', 'आदर्श-दंपत्ति', 'बिगड़े का सुधार', 'आदर्श हिंदू' आदि हैं और सहाय जी की 'सौंदर्योपासक' और 'राधा कांत'।

तृतीय विकास (सन् १९१५ से १९३६ तक)

हिंदी उपन्यासों के तृतीय विकासकाल की विशेषता यह है कि अनुवाद रूप में दूसरी भाषाओं का कूड़ा-करकट हिंदी में जमा करने की प्रवृत्ति का प्राय: अन्त हो गया। प्रथम और द्वितीय काल में तो अनुवादक जो उपन्यास पढ़ते या पा जाते थे उसी का उल्था हिंदी वालों के सामने रखना वे अपना कर्तव्य समझते रहे; परन्तु इस काल में अँगरेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, जापानी आदि विदेशी तथा बँगला, मराठी, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाओं के प्राय: श्रेष्ठ उपन्यासों के ही अनुवाद हुए। सीधे अनुवादों के अतिरिक्त इन भाषाओं के उपन्यासों के आधार पर कुछ पुस्तकें स्वतंत्ररूप से भी लिखी गयीं। इस सम्बन्ध में इतना कह देना आवश्यक है कि बम्बई के "ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय" ने 'शरत-साहित्य' के नाम से बँगला के सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक शरदचन्द की समस्त रचनाओं का जिस प्रकार हिन्दी में प्रचार किया है, देशी-विदेशी अन्य सुप्रसिद्ध उपन्यासकारों की रचनाओं को उसी प्रकार हिंदी-संसार के सामने रखने से अनुवादकों और प्रकाशकों का कार्य सराहनीय समझा जायगा।

इस युग में मौलिक उपन्यासों की संख्या अनुवादों से अधिक है। वस्तुत: भाषा को अनुवादों पर नहीं, अपनी मौलिक रचनाओं पर ही गर्व होता है। प्रेमचन्द इस युग के सर्वश्रेष्ठ लेखक हैं। 'सेवासदन',

'प्रेमाश्रम', 'रङ्गभूमि', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान' इत्यादि उनके उपन्यास हिन्दी साहित्य की अमूल्य और स्थायी निधि हैं। इनमें भारतीय समाज के निम्न और मध्यम वर्गों की सामाजिक जीवन-कथा के साथ-साथ राजनीतिक चेतना के विकास का जो क्रमबद्ध इतिहास मिलता है, वह बड़े महत्व का है। बाबू जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली', विश्म्भरनाथ शर्मा कौशिक के 'माँ' और 'भिखारिणी', प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'विदा', 'विकास' और 'विजय' भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा', चतुरसेन शास्त्री के 'परख' और 'हृदय की प्यास', जैनेन्द्रकुमार के 'तपोभूमि' और 'सुनीता', राजा राधिकारमणसिंह के 'रामरहीम', 'सूरदास' और 'टूटा तारा', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के 'दिल्ली का दलाल', 'सरकार तुम्हारी आँखों में', 'बुधुआ की बेटी' इत्यादि उपन्यास इस युग की श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। मनोरंजन और कला, दोनों दृष्टियों से इनमें अधिकांश रचनाएँ सफल हैं और हिंदी उपन्यासों के विकास का परिचय इनके बिना अधूरा ही समझा जायगा।

प्राय: इन सभी कृतियों में सामाजिक समस्याओं पर ही विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया गया है। वर्णन और प्रदर्शन की दृष्टि से ये रचनाएँ तीन वर्गों में विभाजित को जा सकती हैं। प्रथम वर्ग में वे रचनाएं आती हैं जिनके लेखकों ने पर्याप्त संयम से काम लिया है और यथार्थवाद के नाम पर सामाजिक कुरीतियों के अरुचिकर चित्र स्पष्ट रूप से पाठकों के सामने नहीं रखे हैं—केवल संकेत रूप से ऐसी अस्पष्ट रेखाएँ-सी खींच दी हैं कि चतुर पाठक लेखक का तात्पर्य सरलता से समझ लेता है। 'कंकाल', 'तितली', 'माँ', 'भिखारिणी', 'विदा', 'परख', 'सुनीता', 'सूरदास', 'चित्रलेखा' आदि कृतियाँ इसी वर्ग की हैं। दूसरे वर्ग में वे रचनाएँ आती हैं जिनके रचयिताओं ने कुरीतियों, पाखंडों और कुसंस्कारों के काले-काले निगेटिव सामने रखे हैं जिनके अनाकर्षक और भयावने होने के कारण

पाठक उनमें रस नहीं ले पाता और इस प्रकार उनके पठन-पाठन से पड़नेवाले कुप्रभाव से बच जाता है। परंतु उनसे कभी-कभी उत्सुकता और जिज्ञासा इतनी बढ़ती है कि पर्दे के पीछे की बात जानने के लिए पाठक अपनी दृष्टि को अधिक पैनी कर लेने की चाह करता है। 'भिखारिणी' और 'विजय' इसी ढंग की कृतियाँ हैं।

अंतिम वर्ग में उग्र जी के अधिकांश उपन्यास हैं जिनमें यथार्थता का ऐसा स्पष्ट चित्र खींचा गया है जो प्रभावोत्पादक होते हुए भी सुरुचिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। फलस्वरूप उग्र जी की रचनाएँ लोकप्रिय तो खूब हुईं, तथापि उनका प्रवेश पाठकों के उस क्षेत्र में अधिक नहीं हो सका जो शालीनता और सुरुचि का समर्थक रहा है। घर के बड़े-बूढ़ों ने यदि उनकी रचनाएँ पढ़ीं तो समाप्त करके आवरण पर कागज की जिल्द चढ़ाकर उन्हें इस तरह बंद करके रख दिया कि लड़के-लड़कियों की निगाह कहीं उन पर न पड़ जाय और नवयुवक-नवयुवतियों ने यदि उन्हें प्राप्त कर लिया तो कोर्स की किताबों के बीच में रखकर इस तरह बुजुर्गों से बचाकर पढ़ा कि कहीं वे टोंक न दें—ऐसी किताबें पढ़ी जा रही हैं! क्यों!!

इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में केवल बाबू वृन्दावन लाल वर्मा का नाम ही आदर के साथ लिया जाता है। 'गढ़कुण्डार', और 'विराटा की पद्मिनी' उनके पूर्व प्रकाशित ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिनका पर्याप्त आदर हो चुका है। इधर उन्होंने 'झाँसी की रानी' नामक नयी रचना प्रस्तुत की है जो बहुत लोकप्रिय हुई है। इस दिशा में 'प्रसाद' जी ने भी प्रयास किया था, परंतु हिंदी-जगत् के दुर्भाग्य से उनका 'इरावती' उपन्यास अधूरा ही रह गया।

इस युग के ये मौलिक उपन्यास प्रायः उन सभी विशेषताओं से युक्त हैं जिनके लिए विदेशी रचनाएँ श्रेष्ठ समझी जाती हैं। इन उपन्यासों ने हिंदी पाठकों की रुचि का परिष्कार किया है। कौतूहल-वर्धक कोरी घटना-विचित्रता से युक्त ऐयारी और जासूसी उपन्यासों के स्थान

पर हिन्दी पाठकों का एक वर्ग सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक समस्याओं पर लक्ष्य रखनेवाले इन उपन्यासों का प्रेमी हो गया है। चरित्र-विवेचना, कथोपकथन की स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता, अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति और अंतर्भावों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या आदि विशेषताओं से युक्त होने के कारण हिंदी के उक्त उपन्यासों में अनेक विश्व-उपन्यास-साहित्य में ऊँचा स्थान पा सकते हैं।

आधुनिक काल (सन् १९३९ से)

पिछले दस-पंद्रह वर्षों में जिन नये-नये लेखकों ने इस क्षेत्र में सुन्दर काम किया है, उनमें सर्वश्री यशपाल, अमृतलाल नागर, रामेश्वर शुक्ल अंचल, गंगाप्रसाद मिश्र आदि का नाम उल्लेखनीय है। प्रत्येक की चार-चार पाँच-पाँच रचनाएँ अब तक सामने आ चुकी हैं जिनसे उनकी विचारधारा के विकास-क्रम का परिचय मिलता है। इनके अतिरिक्त और भी कई लेखक एक-एक दो-दो उपन्यास लिखकर इस क्षेत्र में प्रवेश पाने के अधिकारी हो चुके हैं। इनकी लगन और उमंग के साथ-साथ भारतीय जीवन को नयी परिस्थिति में नये दृष्टिकोण से परखने की क्षमता देखकर बड़ा संतोष होता है, परन्तु खेद इस बात का है कि इनमें से अधिकांश के लिए स्त्री-पुरुष के नैसर्गिक आकर्षण के प्रति ऐसी उन्मत्तकारिणी रुचि है जो स्वस्थ और संयमित प्रेम या संबंध की कदाचित् कल्पना के आनंद से भी उन्हें वंचित रखती है। न तो किसी उन्नतशील राष्ट्र की भावी विभूतियों के हाथ में ऐसी अस्वास्थ्यकर कृतियाँ देना ही कल्याणकारी समझा जा सकता है और न उसके कलाकारों के लिए कोरी रंगीनी में रँगा रहना ही शोभा देता है। काल का चक्र वसंत की मादकता सबमें भरता है; परंतु सभी समय उसका ही स्वप्न देखना प्राकृतिक दृष्टि से भी अस्वाभाविक ही समझा जायगा। सारांश यह कि हमारे उपन्यास लेखकों में सहृदयता और कल्पना की प्रचुरता के साथ वह अंतर्दृष्टि भी विद्यमान है जो

उपन्यास को सफल बनाने के लिए अपेक्षित है, तथापि हमारे अधिकांश नवोदित उपन्यास लेखक कल्पना के सहारे पूर्व कृतियों में वर्णित समस्याओं को ही हेर-फेर के साथ अपनाकर प्रेम की उन्हीं वृत्तियों और अंतर्दशाओं के भद्दे चित्र, स्वाभाविकता और यथार्थवाद के नाम पर खींच रहे हैं जिनके लिए हिंदी-कविता किसी समय बदनाम हो चुकी है। पैनी अंतर्दृष्टि के स्वतंत्र उपयोगी की सद्भावता के अभाव के साथ-साथ समकालीन समस्याओं के स्वतंत्र अध्ययन और मनन की भी हमारे नवोदित उपन्यास लेखकों में कमी है। उन्हें ध्यान रखना होगा कि केवल महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्या अपना लेने से ही उपन्यास सफल या लोकप्रिय नहीं हो जाता और आज हिंदी के शिक्षित पाठक देशी-विदेशी लेखकों के अनुकरण मात्र—जूठन—से सन्तुष्ट भी नहीं हो सकते। अतः नवोन्मषशालिनी प्रतिभा के बल पर ही उन्हें प्रसिद्ध प्राप्त हो सकती है।

❀ समाप्त ❀